chapter - 3

xxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

: तृतीय अध्याय :

: प्रेमचन्द के उपन्यासों में निरूपित नारी पात्र :

xxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

WONDER

:: तृतीय अध्याय ::

: प्रेमचन्द के उपन्यासों में निरूपित नारी-पात्र :

प्रास्ताविक :

उपन्यास में मानव-जीवन के यथार्थ का समग्र समाकलन होता है। उपन्यासकार को मानव-जीवन का जो अनुभव होता है, उसे वह एक विशिष्ट दृष्टि से प्रस्तुत करता है। यह दृष्टि लेखक की अपनी होती है। दूसरे लेखक की यह दृष्टि भी युगीन-स्थितियों और नूतन ज्ञान एवं विचारधाराओं से निर्मित होती है। यह दृष्टि आदर्शवादी, यथार्थवादी, समाजवादी यथार्थवादी या आलोचनात्मक हो सकती है। कुछ भी हो, इतना तो असंदिग्धतया कहा जा सकता है कि उपन्यास में मानव-जीवन का समग्र प्रस्तुति-

करण होता है । मनुष्य के जीवन में आधी हिस्सेदारी स्त्रियों की है, इसीलिए तो स्त्री-जगत को "आधी दुनिया" की संज्ञा दी गई है। एक सर्वेक्षण के अनुसार इस समय संसार में एक हजार पुरुष के सामने करीबन नव सौ चालीस स्त्रियों की संख्या है, जो करीब-करीब 50 % बैठती है । प्रस्तुत अध्यxxमें अध्याय में हम प्रेमचन्द के उपन्यासों में निरूपित इस "आधी दुनिया" पर एक दृष्टिक्षेप करेंगे ।

संसार में सर्वत्र एक द्वन्द्व नज़र आता है — पुरुष और प्रकृति, स्त्री और पुरुष का । अतः कहा जा सकता है कि इन दोनों का जीवन परस्पराश्रित है । अतः एक की बात करते समय दूसरे की चर्चा अवश्यंभावी है । दोनों का समान महत्व है । मनुष्येतर प्रकृति में तो इस बराबरी की भावना को xx लक्षित भी किया जा सकता है, परन्तु मनुष्य चूंकि चिंतनशील प्राणी है, उसने अपनी विकास-यात्रा में चिंतन के माध्यम से धर्म, दर्शन, सभ्यता, संस्कृति, शास्त्र, रीति-रिवाज इत्यादि के नये दायरे निर्मित किये । नयी सीमाएं निर्धारित कीं । सभ्यता और संस्कृति के निर्माण की इस प्रवृत्ति में उसने कुछ ऐसे नीति-नियमों का निर्धारण किया, जिनके कारण विश्व के अधिकांश देशों में पितृसत्ताक समाज का निर्माण हुआ । जिसके तहत नारी का महत्व उत्तरोत्तर कम होता गया । भारत ही नहीं विश्व के अधिकांश देशों में नारी की समाजगत स्थिति पुरुष की तुलना में बेहतर नहीं है । बल्कि उसे "दोयम दर्जे" की स्थिति ही कहा जा सकता है । विश्व-विख्यात नारीवादी लेखिका सिमान-द-बुआ ने अपने बहुचर्चित ग्रन्थ का नाम ही "वुमन : द सैकण्ड सेक्स" रखा है, जो सर्वथा उचित है ।

प्रेमचन्द-पूर्वकाल में स्त्रियों की स्थिति अच्छी नहीं थी । केवल संपन्न परिवारों में स्त्रियों के लिए शिक्षा की व्यवस्था थी । शेष समाज में पढ़ी-लिखी स्त्रियों को कुलीन नहीं समझा जाता था । संक्षेप में कहें तो नारी-शिक्षा को अनैतिक माना

जाता था । अत्यन्त संपन्न परिवारों की महिलाओं के अतिरिक्त केवल वेश्याओं और नर्तकाओं का पढ़ना ही उपयुक्त माना जाता था । सामान्य परिवार की लड़की का पढ़ना अधःपतन था । इसका संकेत हमें श्रीमती डा. राधाकृष्णमूर्तिकी निम्नांकित पंक्तियों में प्राप्त होता है :

" इन द ब्रिटिश पीरियड द पोजिशन आफ विमेन इन इण्डिया वाज़ द जनरल रूल फॉर आल रीस्पेक्टेबल कास्ट आफ हिन्दूज एण्ड हेड इवन स्प्रेड टु सम सेक्शनंस आफ द मुस्लिम पोप्युलेशन, ~~केमस्वम~~ फेमिनाइन लिटरसी वाज़ रिगार्डेड एज ए सोर्स आफ मोरल डेन्जर सिन्स आन्ली डान्सिंग गर्ल्स कुड नोर्मली रीड एण्ड राइट. एण्ड लेडिज़ आफ आर्थोडक्स फेमिलिज़ कुड हेव बीन शोक्ड इफ ए रिपोर्ट हेड स्प्रेड थेट थे वेर एक्वेन्वेण्टेड विथ ~~[illegible]~~ सिंगिंग एण्ड डान्सिंग." [1]

किन्तु बाद में ब्रह्मोसमाज , आर्यसमाज , रामकृष्णमिशन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर , महात्मा ज्योतिबा फुले , महर्षि घोंडो केशव कर्वे आदि के कारण स्त्री-शिक्षा का कुछ प्रचार-प्रसार हुआ और उसके कारण स्त्रियों की सामाजिक-पारिवारिक स्थिति में कुछ बदलाव आया । सन् 1885 में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई । कांग्रेस ने भी उपेक्षित भारतीय नारी के जीवन में कुछ बदलाव लाने का प्रयत्न किया । डा. शैल रस्तोगी ने इस संदर्भ में लिखा है :

" कांग्रेस के बड़े-बड़े नेता यह ~~समझने~~ समझने लगे थे कि नारी जब पुरुष की अर्द्धांगिनी है तो अर्द्धांगिनी के अविकसित रहने पर दूसरा अर्द्धांग किस प्रकार पुष्ट हो सकता है । नारी पुरुष की सहगामिनी है । वह बुद्धि में पुरुष से पीछे नहीं , फिर उसको ही क्यों पीछे रखा जाए ।" [2]

अतः प्रेमचन्द युग में हमें "अबला" नारी के स्थान पर "सबला" नारी के दर्शन होने लगे थे । सामाजिक रीति-रिवाजों , विशेषतः दहेज आदि के कारण , कहीं-कहीं उसकी स्थिति कारुणिक है , किन्तु अनेक स्थानों पर अब वह पुरुष की दासी नहीं सहधर्मचारिणी बनने लगी थी । अनेक क्षेत्रों में उसे पुरुषों के समान अधिकार भी मिलने लगे थे और शनैः शनैः उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व अस्तित्व में आने लगा था । इस अध्याय में हम प्रेमचन्द के औपन्यासिक नारी - पात्रों पर विश्लेषणात्मक दृष्टिपात करेंगे ।

विरजन :

विरजन प्रेमचन्द के "वरदान" उपन्यास की नायिका है । वह मुंशी संजीवनलाल तथा उनकी धर्मपत्नी सुशीला की एक सुयोग्य संतान है । उसका मूल नाम तो वृजरानी है , किन्तु प्यार से सबलोग उसे विरजन कहकर बुलाते हैं । बाद में वृजरानी नाम से वह कविताएं भी लिखती है । विरजन के माता-पिता बतौर किरायेदार सुवामा के मकान में रहते हैं । सुवामा बनारस के पुराने रईस शालिग्राम की पत्नी है । शालिग्राम अपनी उदारता एवं दानवीरता के कारण कर्जदार हो जाते हैं और एक बार कुंभ के मेले में जाते हैं तो वापस नहीं लौटते । सुवामा चाहती तो कानूनी दांवपेचों से पति के कर्जों से मुकर सकती थी , पर वह ऐसा नहीं करती । अपनी सारी सम्पत्ति बेचकर वह अपने पति के कर्ज को चुका देती है । अतः उसकी माली हालत खराब हो गई है । प्रताप सुवामा का पुत्र है । प्रताप और सुवामा हमउम्र हैं । दोनों एक दूसरे को चाहते हैं । यह प्रीत बचपन की है । परंतु विरजन की शादी डिप्टी कमिश्नर श्यामाचरण के पुत्र कमलाचरण से हो जाती है । कमलाचरण एक बड़े बाप का बिगड़ा हुआ बेटा है । आवारा , जुआरी , कबूतरबाज़ , पतंगबाज़ और लम्पट है । प्रताप हर तरह से योग्य था , प्रतिभावान , बुद्धिमान और चरित्रवान । किन्तु आर्थिक वैषम्य के कारण विरजन से उसका विवाह नहीं

हो सका । आर्थिक वैषम्य के समीकरण भी अनमेल विवाह के कारण बनते हैं । अपनी आवारगी के कारण कमलाचरण की एक दुर्घटना में असमय मृत्यु हो जाती है और विरजन विधवा हो जाती है ।

कमलाचरण की मृत्यु के उपरांत प्रताप के मन में विरजन के प्रति पुनः प्रेम-भावना का उदय होता है और एक दिन चोरी-चोरी उसके घर पहुंचता है । उस समय विरजन धरती पर बैठकर कुछ लिख रही थी । उसने श्वेत वस्त्र धारण कर रखे थे । उसकी उस विचार-वान , सौम्य-पवित्र मुद्रा को देखकर प्रताप का हृदय-परिवर्तन होता है और वह देशसेवा का व्रत धारण करके संन्यासी हो जाता है । वह बालाजी नाम धारण करता है । देखते-ही-देखते त्याग और सेवा के कारण उनकी चर्चा जगह-जगह होने लगती है । विरजन अपना मन साहित्य-सेवा में लगाती है और एक सुविख्यात कवयित्री के रूप में यश और कीर्ति अर्जित करती है । बनारसवालों के आग्रह पर जब बालाजी बनारस पधारते हैं तब व्रजरानी उनके स्वागत में एक कविता भी लिखती है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विरजन का चरित्र एक आदर्श भारतीय नारी के अनुरूप है । वह सुंदर , सुशील और विदुषी है । मन से प्रताप को चाहते हुए भी माता-पिता की इच्छानुसार कमला-चरण से विवाह कर लेती है । विवाह के उपरांत उसका व्यवहार शालीन , संयत और गौरवपूर्ण रहता है और सतीत्व के आदर्श को कलंकित नहीं होने देती । पति को भी राह पर लाने की चेष्टा करती है । पति की मृत्यु के उपरांत वह वैधव्य-जीवन का पूरी मर्यादाओं के साथ पालन करती है । अपनी चित्तवृत्तियों का उदात्तीकरण (sublimation) वह एक कवयित्री के रूप में करती है । विरजन के चरित्र पर तत्कालीन गांधीवादी परिवेश का प्रभाव भी परिलक्षित होता है । विरजन के बदले यदि कोई सामान्य लड़की होती तो परिस्थितियों के सामने

घुटने टेक देती , किन्तु विरजन संघर्षों का सामना गौरवशाली ढंग से करती है । उसके जीवन में चारित्रिक-स्खलन के कई प्रसंग उपस्थित होते हैं , परन्तु वह अपने आदर्शों से विचलित नहीं होती ।

किसीको यहां प्रश्न हो सकता है कि प्रेमचन्द तो प्रगतिशील विचारोंवाले लेखक थे , फिर उन्होंने विरजन का पुनर्विवाह क्यों नहीं करवाया । किन्तु यह बात यहां ध्यातव्य रहे कि उपन्यास में यथार्थ का आकलन होता है और तत्कालीन सवर्ण समाज में विधवा-विवाह होते नहीं थे । विधवा-विवाह न करवाके उन्होंने नारी-जीवन की जिस कारुणिक छवि को प्रस्तुत किया है वह अधिक प्रभावोत्पादक बन पड़ी है , दूसरे प्रेमचन्द की यह प्रारंभिक और अपरिपक्व रचना है । इस संदर्भ में डा. मनोहर बंदोपाध्याय के निम्नलिखित विचार विचारणीय हैं :" द स्टोरी मेक्स ए हेण्डसम एब्सोलसण्ट रीडिंग. एण्ड थो धेर आर अनयुजवल रिफोर्मेटिव अटेम्प्ट्स इन द नावेल एण्ड द केरेक्टर्स आर आर्विट्रिली इन्ट्रोड्युस्ड एण्ड रिमूव्ड फ्रोम द सीन , इट आफर्स ब्रिलियण्ट इण्टरप्रिटेशन आफ स्वामी विवेकानंद्स थोट्स विथ द यंग आथर हेड स्टडीड आरड्युअसली सम टेन इयर्स एगो." [3]

इस संदर्भ में डा. हंसराज रहबर के मतको उद्धृत करने का मोह-संवरण नहीं हो रहा —" विरजन अब एक हिन्दू विधवा है । वह अब कविताएं लिखती है और कलाकृतियों में अपनी मनोभावनाओं को व्यक्त करती है । बचपन के साथी प्रताप से , जो अब बालाजी है , वह बराबर प्रेम करती है । लेकिन यह आध्यात्मिक प्रेम है । इसमें वासना की गंध नहीं । यह उपन्यास घटना-प्रधान है । विरजन का चरित्र उभरने नहीं पाया है , वह आदर्शवाद के नीचे दब गया है ।" [4] पर इतना तो स्पष्ट है कि विरजन के चरित्र द्वारा लेखक यह सत्य उद्घाटित करना चाहते हैं कि जिस समाज में विवाह लड़के-लड़की के प्रेम और गुण-स्वभाव को देखकर नहीं होते वहां इस प्रकार की त्रासदियां ही हो सकती हैं ।

माधवी :

माधवी "वरदान" उपन्यास की सह-नायिका है । वह विरजन की एक अंतरंग सखी है । जब विरजन प्रताप से विवाह नहीं कर सकी तो उसने माधवी के मन में प्रताप के प्रति प्रेम के भाव का बीजारोपण कर दिया । प्रताप की माँ सुवामा भी यही चाहती थी कि प्रताप एक गृहस्थ का जीवन व्यतीत करे । अतः प्रताप जब बालाजी के रूप में बनारस आता है तो विरजन माधवी को बालाजी के कक्ष में भेज देती है । दोनों के बीच जो वार्तालाप होता है उससे बालाजी को ज्ञात होता है कि माधवी पिछले कई वर्षों से उसे चाहती रही है । माधवी के प्रेम और त्याग की भावना से बालाजी का हृदय भी पसीजता है और वह माधवी से कहते हैं :

" तुम जैसी देवियाँ भारत का गौरव हैं । मैं बड़ा भाग्यवान हूं कि तुम्हारे प्रेम जैसी अनमोल वस्तु मेरे हाथ आ रही है । यदि तुमने मेरे लिए योगिनी बनना स्वीकार किया है तो मैं भी तुम्हारे लिए इस संन्यास और वैराग्य को त्याग सकता हूं । जिसके लिए तुमने अपने को मिटा दिया है, वह तुम्हारे लिए बड़े-से-बड़ा बलिदान करने में तनिक भी नहीं हिचकिचायेगा ।" 5

परंतु तब अचानक माधवी का हृदय-परिवर्तन हो जाता है और वह भी बालाजी के साथ संन्यास ग्रहण कर योगिनी बन जाती है । माधवी के चरित्र की यह परिणति कुछ-कुछ आदर्शवादी अतएव अस्वाभाविक लगती है । एक तरफ लेखक ने यह बताया है कि माधवी पिछले बारह वर्षों से बालाजी के लिए प्रतीक्षित थी और जब बालाजी स्वयं उसके प्रति प्रतिश्रुत होते हुए गृहस्थ-जीवन के लिए उद्यत होते हैं, तब माधवी आदर्शवाद की ओर उन्मुख होती है । ऐसा प्रतीत होता है कि "रचनाकाल के समय प्रेमचन्द स्वयं आदर्शवादी भावुकता में लिप्त थे और यथार्थवादी कला-मूल्यों से पूर्णतया अवगत नहीं हुए थे । उस समय प्रेमचन्द का लेखन भी परिपक्व अवस्था में नहीं था । अतः माधवी का चरित्र लेखक के हाथों कठपुतली-सा

बनकर रह गया है । प्रसिद्ध औपन्यासिक थैकरे का कथन है कि उपन्यास में पात्रों का स्वतंत्र व्यक्तित्व होना चाहिए । यदि पात्र लेखक के हाथों कठपुतली बन जाते हैं तो उससे लेखक की कमजोरी प्रकट होती है । यथा — " आई डोन्ट कन्ट्रोल माय कैरेक्टर्स , थे टेक मी व्हेर-एवर थे प्लीज । " [6] डा. नगेन्द्र ने भी अपने "वाणी के न्याय-मंदिर " में नामक निबंध में प्रेमचन्द पर यह आरोप लगाया था कि वे अपने पात्रों पर मनमानी करते हैं[7]। यद्यपि उन्होंने यह बात "प्रेमाश्रम" के ज्ञानशंकर के संदर्भ में कही थी , किन्तु माधवी पर भी उसे लागू किया जा सकता है ।

यहां एक और बात का उल्लेख करना हम अपरिहार्य समझते हैं । प्रेमचन्द के उपन्यासों में निरूपित प्रधान नारी पात्रों की चर्चा यहां हम कर रहे हैं । उनके गौण नारी-पात्रों के अध्याय के अन्त में रखने का उपक्रम है ।

<u>सुमन :</u>

सुमन "सेवासदन" उपन्यास की नायिका है । वह कृष्णचन्द्र दारोगा तथा गंगाजली की पुत्री है । कृष्णचन्द्र एक ईमानदार दारोगा है और पच्चीस साल की दारोगागिरी के बावजूद अपनी ईमानदारी के कारण खास धन या संपत्ति नहीं जोड़ पाये हैं । लड़की सुमन सुंदर और सुशील है , अतः दारोगाजी का खयाल था कि उसके ब्याह में कोई दिक्कत नहीं आयेगी । परंतु सुमन जब विवाह योग्य हो जाती है xxx और दारोगाजी उसके लिए योग्य वर की तलाश में निकलते हैं तब उनकी भ्रांति दूर होती है । रूप , गुण और कुलीनता को कोई नहीं पूछता । सब दहेज के लिए मोटी रकम मांगते हैं । एक सज्जन कहते हैं — " महाशय ! मैं स्वयं इस कुप्रथा का जानी दुश्मन हूं । लेकिन करूं क्या ? अभी पिछले साल लड़की का विवाह किया । दो हजार रुपये तो केवल दहेज में देने पड़े । [8] ध्यान रहे यह दो हजार रुपये 20वीं शताब्दी

के पहले या दूसरे दशक के हैं । (दो हजार और खाने-पीने में खरचने पड़ें । आप ही कहिये, यह कमी कैसे पूरी हो ? " 8 दूसरे महाशय तो और भी नीति-कुशल निकले । कहने लगे — " दारोगाजी ! मैंने लड़के को पाला है । सहस्रों रुपये उसकी पढ़ाई में खर्च किए हैं । आपकी लड़की को उससे उतना ही लाभ होगा जितना मेरे लड़के को । तो आप ही न्याय कीजिए कि यह सारा भार मैं अकेले कैसे उठा सकता हूं ? " 9

क्या न्याय करते दारोगाजी ? वे तय करते हैं — " धर्म का मजा चख लिया, सुनीति का हाल भी देख लिया, अब लोगों के खूब गले दबाऊंगा ; खूब रिश्वत लूंगा । " 10 और ऐसा ही वे करते हैं, किन्तु अनभ्यस्त होने के कारण पकड़े जाते हैं और उन्हें जेल हो जाती है । परन्तु इसके कारण सुमन के जीवन की धुरी तो गड़बड़ा ही जाती है । दहेज के अभाव में 15 रुपये मासिक नौकरी करने वाले गजाधर-प्रसाद नामक एक दुहाजू से सुमन की शादी कर दी जाती है ।

गजाधर जिस किराये के मकान में रहता था उसके सामने एक भोली नामक गौनहारिन वेश्या रहती थी । सुमन शौकीन तबीयत थी । पहनने ओढ़ने का और सुख-संपत्ति का शौक था उसे, किन्तु अपने गृहवधू के संस्कारों के कारण वह किसी तरह मन-मसोसकर जिए जाती है और अपने मन में किसी प्रकार का विचलन नहीं आने देती । एक स्थान पर वह कहती है —

" मैं दरिद्र सही, दीन सही, पर अपनी मर्यादा पर दृढ़ हूं । किसी भले मानुष के घर में मेरी रोक नहीं, कोई मुझे नीच तो नहीं समझता । वह कितना ही भोग-विलास करे, पर उसका कहीं आदर तो नहीं होता । बस, अपने कोठे पर बैठी अपनी निर्लज्जता और अधर्म का फल भोगा करे । " 11

किन्तु दारोगा कृष्णचन्द्र की तरह सुमन का भी मोहभंग होता है । सौंदर्य और रामनवमी वाले प्रसंग से वह अनुभव करती है कि केवल धन ही नहीं धर्मवाले भी भोली के कृपाकांक्षी होना चाहते हैं ।

HANSA MEHTA LIB.

होलीवाले दिन पद्मसिंह के यहाँ भोली का मुजरा होता है । इस प्रसंग से उसका रहा-सहा विश्वास भी धराशायी हो जाता है और वह सोचती है कि केवल कुचरित्र व्यक्ति ही इन रमणियों पर जान नहीं छिड़कते बल्कि सच्चरित्र और सदाचारशील व्यक्तियों तक भी उनकी पहुँच है ।[12] इस तरह क्रमशः सुमन के मन का अन्तर्द्वन्द्व बढ़ता जाता है । उस पर यदि गजाधर का व्यवहार उसके प्रति ठीक होता तो शायद सुमन में गिरावट न आती । परन्तु उसका व्यवहार भी उज्जड़ और मूर्खतापूर्ण रहता है । एक दिन देर रात पहुँचने पर गजाधर उसे अपने घर से निकाल देता है । वह पद्मसिंह के यहाँ आश्रय के लिए जाती है, पर बदनामी के डर से वे उसे अपने यहाँ नहीं रखते । अन्ततः उसे भोली के यहाँ ही आश्रय मिलता है । सुमन पहले तो सिलाई काम करके अपना गुजारा करना चाहती थी, परंतु बाद में भोली के बहुत समझाने पर गौनहारिन हो जाती है । डा. हंसराज रहबर सुमन के संदर्भ में लिखते हैं —

" सतीत्व की रक्षा प्रेमचन्द का प्रिय विषय है । वे कहीं भी नारी और पुरुष के संबंध को दूषित होने देना पसंद नहीं करते । "सेवासदन" की सुमन दालमण्डी में बैठकर सिर्फ नाचती-गाती है । लेकिन अपने सतीत्व की रक्षा करती है । हिन्दू नारी ने शताब्दियों से सीता और सावित्री को अपना आदर्श मान रखा है । प्रेमचन्द अपने ~~उपन्यासकोंमें~~ उपन्यासों और कहानियों में अक्सर दिखाते हैं कि हिन्दू नारी- के मन में जाने-अनजाने सतीत्व की रक्षा का परंपरागत संस्कार इतना दृढ़ है कि विरोधी परिस्थितियों में भी उसका सतीत्व ध्रुव और अडिग रहता है । वह जी-जान से उसकी रक्षा करती है । प्रेमचन्द इस बारे में कई बार सुधारक और रूढ़िवादी जान पड़ते हैं, लेकिन वे हिन्दू-नारी के इस विश्वास और आदर्श का समर्थन करते हैं और सतीत्व को हिन्दुस्तानी कौमकी आत्मा मानते हैं । "[13]

इधर पद्मसिंह को सुमन के गौनहारिन हो जाने का बहुत दुःख होता है । वे विट्ठलदास को इस घटना की सूचना देते हुए लिखते हैं कि" अब आपको भलिभाँति ज्ञात हो जाएगा कि इस दुर्घटना का उत्तरदाता कौन है ; और मेरा उसे आश्रय देना उचित था या अनुचित ।"[14] विट्ठलदास पर समाजसुधार का नशा चढ़ा हुआ है । स्त्रियों के कल्याण के लिए वे कुछ-न-कुछ किया करते थे । उसीके अन्तर्गत उन्होंने विधवा तथा त्यक्ता स्त्रियों के लिए एक आश्रम खोल रखा था । वे सुमन को समझा-बुझाकर उस आश्रम में भेज देते हैं ।

पद्मसिंह का भतीजा सदनसिंह बुरी लत में पड़कर चौक और दालमण्डी जाने लगता है । सुमन उसे भी सुधारने की चेष्टा करती है । इसी सदन की शादी सुमन की बहन शान्ता से तय होती है, पर जब सदन के पिताजी को यह ज्ञात होता है कि दुल्हन की बड़ी बहन दालमण्डी में गौनहारिन है तो वे बारात वापस ले जाते हैं । सुमन के पिता को पहली बार यहाँ वास्तविकता का पता चलता है, अतः आहत और दुःखी होकर वे गंगा में डूबकर आत्महत्या कर लेते हैं ।

सदन आत्मनिर्भर होकर शान्ता से विवाह कर लेता है । सुमन और शान्ता दोनों सदन के यहाँ सुखपूर्वक रहते हैं, परंतु यहाँ भी कानाफुसियाँ शुरू हो जाती हैं और सुमन को यह स्थान भी छोड़ना पड़ता है । गजाधर पश्चाताप के कारण साधु हो जाता है और दीन-दुखिया औरतों के लिए "सेवासदन" नामक एक संस्था स्थापित करता है । अब वह स्वामी गजानंद है । गजानंद को इस संस्था हेतु किसी सेवाभावी महिला की तलाश थी । सुमन इस कार्य को स्वीकार कर लेती है और अपना शेष जीवन इसीमें व्यतीत करती है । इस प्रकार यहाँ लेखक अनमेल ब्याह के दुष्परिणामों को रेखांकित करते हैं । दहेज के अभाव में सुमन की जिन्दगी दूभर हो जाती है ।

शान्ता :

शान्ता "सेवासदन" की नायिका सुमन की बहन है । जब उसके पिता कृष्णकान्त को जेल हो जाती है, तब वह अपनी बहन सुमन और माँ गंगाजली के साथ मामा उमानाथ के यहाँ आ जाती है । सुमन की शादी तो गजाधर के साथ हो जाती है । जहाँ उसकी जिन्दगी गारद हो जाती है । शान्ता किसी तरह मामा के यहाँ अभावों में पलती है । पिता का साया न रहने पर जिन बच्चों को ननिहाल में रहना पड़ता है, उनकी हालत प्रायः अच्छी नहीं रहती । शान्ता को भी मामा के यहाँ सब काम करना पड़ता है । पद्मसिंह के भतीजे सदन के साथ उसका ब्याह निश्चित होता है, पर ऐन मौके पर सुमन के गौनहारिन होने का रहस्य प्रकट हो जाता है, तब सदन के पिता मदनसिंह बारात वापस लौटा जाते हैं । तब तक कृष्णकान्त जेल से छूट चुके थे । वे बारात लौटा ले जाने का कारण जानना चाहते हैं, तब मदनसिंह बताते हैं —" अच्छा, तो सुनिये, मुझे दोष न दीजिएगा । आपकी लड़की सुमन, जो इस कन्या की सगी बहिन है, पतित हो गई है । आपका जी चाहे तो उसे दालमण्डी में देख आइये ।" [15] इस घटना के आघात से कृष्णकान्त नदी में डूबकर आत्महत्या कर लेते हैं ।

शान्ता की शादी तो टूट जाती है, पर वह सदन को मन से अपना पति मान चुकी थी । इस आशय का एक पत्र भी वह पद्मसिंह को लिख भेजती है —" शीघ्र सुधि लीजिए, एक सप्ताह तक आपकी राह देखूँगी । फिर भी आपने इस अबला की पुकार न सुनी तो आत्महत्या कर लूँगी ।" [16]

उधर बारात लौटाने के मामले में सदन अपने पिता से सहमत नहीं था । अतः वह शहर भाग आता है और नाव खरीदकर मल्लाह हो जाता है । एक दिन वह सुमन और शान्ता की बातों को नाव से उनको पार कराते समय सुन लेता है और शान्ता को पहचान लेता है । वह शान्ता से शादी कर लेता है । सुमन भी

उनके साथ रहने लगती है . किन्तु कुछ समय के उपरांत जब मल्लाहों में सुमन को लेकर विरोध पैदा होने लगता है तब उसे वह आश्रय भी छोड़ना पड़ता है ।

इस तरह उपन्यास में वर्णित घटनाओं को यदि केन्द्र में रखा जाए तो प्रतीत होता है कि शान्ता एक व्यवहारपटु स्त्री है । इसी व्यवहारकुशलता के चलते वह सदन को भी संभाल लेती है और जब महसूस करती है कि सुमन का उसके घर में ठहरना उसके अपने अस्तित्व के लिए उपयुक्त नहीं है तब बड़ी निर्ममता और कठोरता से उसे भी कहीं अन्यत्र जाने के लिए कह देती है । यथा —
" लेकिन बात यह है कि उनकी बदनामी हो रही है । लोग मनमानी बातें उड़ाया करते हैं । वह कहते थे कि अम्माजी यहां आने को तैयार थीं , लेकिन तुम्हारे रहने की बात सुनकर नहीं आयीं , लेकिन बहिन बुरा न मानना , संसार में जब यही प्रथा चल रही है , हम क्या कर सकते हैं । " 17

शान्ता के उक्त कथन से प्रतीत होता है कि वह एक घरेलू किस्म की महिला है । भावना में बहकर अपने वैयक्तिक एवं पारिवारिक हितों को वह क्षति नहीं पहुंचाती । व्यवहार-पटु स्त्रियों में जो एक सहज सामाजिकता उपलब्ध होती है , उसे हम शांता में पाते हैं । पात्रों के वर्गीकरण की दृष्टि से विचार करें तो उसे हम वर्गीकृत (Typical) और स्थिर (Static) चरित्र की कोटि में रख सकते हैं । ऐसी महिलाएं परिस्थितियों को अपने अनुसार नहीं ढालतीं , वे स्वयं परिस्थितियों के अनुसार ढल जाती हैं । संघर्ष उनकी प्रकृति में नहीं होता । सहज जीवन को चाहने के कारण वे समझौतापरस्त (Compromising) होती हैं ।

भोली :

भोली "सेवासदन" का एक पार्श्वभौमिक पात्र है । वह गौनहारिन वेश्या है । गौनहारिन वेश्या उसे कहते हैं जो

जिस्मफरोशी नहीं करती और नाच-गान और मुजरों से अपना व्यवसाय चलाती है । यह गौरतलब है कि जब सुमन को कोई आसरा नहीं देता , तब उसे भोली के यहां आसरा मिलता है । विट्ठलदास जब सुमन को वहां से हटाकर आश्रम में रखवा देता है , तब भी वह उसे खुशि-खुशी जाने देती है । अन्यथा कोठों के संदर्भ में तो यही कहा जाता है कि एक बार उसमें जाकर कोई वापस नहीं लौट पाता ।

विद्यावती :

विद्यावती "प्रेमाश्रम" के जमींदार ज्ञानशंकर की पत्नी है । वह एक सुशील और समझदार गृहिणी है । ज्ञानशंकर लोभी , स्वार्थी , दुष्ट और नीच प्रकृति का है । उसके चाचा प्रभाशंकर पुराने जमाने के उदार और दयालु व्यक्ति हैं । उनका परिवार बड़ा है । ज्ञानशंकर का परिवार छोटा है , अतः वह अलग्योझा चाहता है । उस समय विद्यावती अपने पति को समझाने की भरसक कोशिश करती है , पर ऐसे सब मामलों में ज्ञानशंकर उसको झिड़क देता है । विद्या एक बड़े तालुक्केदार की पुत्री है और वैसा ही बड़ा दिल उसने पाया है । विद्या ज्ञानशंकर की पत्नी है किन्तु दोनों के विचारों और संस्कारों में आसमान-जमीन का अंतर पाया जाता है । ज्ञानशंकर जहां लोभी , लालची और स्वार्थी है ; विद्यावती सुशील , उदार और मानवतावादी है ।

ज्ञानशंकर लखनपुर गांव के लगान में इजाफा करवाना चाहते हैं । इस हेतु आवश्यक कानूनी कार्यवाई उन्होंने कर ली थी । जिला मैजिस्ट्रेट ज्वालासिंह के फैसले पर उनकी अर्जी का दारोमदार था । ज्वालासिंह की पत्नी शीलमणी और विद्या में मित्रता थी । ज्ञानशंकर इस मित्रता के संबंध से लाभ उठाने के लिए अपनी पत्नी को कहते हैं , परन्तु विद्या इस बात से इन्कार कर देती है और इस प्रकार पति का पक्ष न लेकर वह न्याय

और मानवता का पक्ष लेती है ।

ज्ञानशंकर लोभी , स्वार्थी , क्रूर और दुष्ट ही नहीं , लंपट भी है । कृष्णभक्ति और रास का सहारा लेकर वह अपनी साली गायत्रीदेवी को भी अपने मोहजाल में फंसाते हैं । एक पत्र में वे गायत्री को लिखते हैं — " मरने लगूं तो उसी मुरलीवाले की सूरत आंखों के सामने हों , और यह सिर राधा की गोद में हो । इसके अतिरिक्त मुझे और कोई इच्छा और लालसा नहीं है । राधिका की एक तिरछी चितवन , एक मृदुल मुस्कान , एक मीठी चुटकी , एक अनोखी छटा पर मैं समस्त संसार की संपदा को न्योछावर कर सकता हूं ।" [18]

ज्ञानशंकर की इस लफ्फाजी में आकर गायत्री बनारस चली आती है । वहां ज्ञानशंकर कृष्णलीला का आयोजन करते हैं । स्वयं कृष्ण बनते हैं , गायत्री राधा बनती है । अपनी भावुकता में गायत्री आत्मसमर्पित होते हुए ज्ञानशंकर के चरणों पर गिर पड़ती है । ज्ञान-शंकर उसे उठाते हुए अपनी छाती से लगा लेते हैं । उस समय अचानक विद्यावती वहां आ जाती है और इस दृश्य को देखकर हतप्रभ रह जाती है । इसके नारी-स्वाभिमान को इससे चोट पहुंचती है । उस समय तो वह ज्ञानशंकर को खूब भला-बुरा कहती है , परन्तु इस मानसिक आघात को वह झेल नहीं पाती और अन्ततः बीमार होकर उसी हालात में आत्महत्या कर लेती है । इस प्रकार हम देख सकते हैं कि विद्या कुलीन , संस्कारी , सुशिक्षित , सच्ची , न्याय-प्रिय , नारी-चेतना संपन्न और स्वाभिमानी नारी है ।

गायत्री :

गायत्री "प्रेमाश्रम" उपन्यास का एक दूसरा महत्वपूर्ण नारी पात्र है । वह रायसाहब की बेटी और विद्या की बहिन है । गायत्री का विवाह गोरखपुर के रईस और संपन्न परिवार में हुआ था , किन्तु उसका पति विलासी और दुराचारी था । विवाह

के साल के उपरांत ही उसके पति का देहान्त हो जाता है । उसकी सम्पत्ति की देख-रेख रखने वाला कोई नहीं था । पिता का पति और गायत्री का बहनोई ज्ञानशंकर इस मौके का लाभ उठाना चाहता है । उसकी नज़र गायत्री की संपत्ति पर थी । अतः वह गायत्री को अपनी कूटनीति की जाल में फंसाकर उसकी संपत्ति हड़प लेना चाहता है । दूसरे गायत्री सुंदर , युवा और भावुक है । पति का सुख केवल दो साल रहा । अतः उसकी अभुक्त काम-वासना के जरिये ज्ञानशंकर उसे अपने प्रेम-जाल में फंसाना चाहता है । गायत्री अपना अधिकतर समय पूजा-पाठ में बिताती है । यह सब देखने पर ज्ञानशंकर उसके साथ कृष्णलीला का स्वांग रचाता है । गायत्री की अभुक्त काम-वासना भक्ति के आवरण में उभर आती है । वह स्वयं को राधा और ज्ञानशंकर को कृष्ण समझकर उसके साथ प्रेमक्रीड़ा करने लगती है । गायत्री जितनी अधिक संपन्न है , उतनी ही अधिक भोली और अनजान भी है । इसके कारण ज्ञानशंकर की ओर उसका झुकाव बढ़ने लगता है । एक स्थान पर वह स्वयं कहती है —

" मैं तो उनके सामने बावली-सी हो जाती हूं ।" [19]वह कभी गोपिका की भांति ज्ञानशंकर रूपी कृष्ण के ध्यान में अचेत हो जाती है । " उनकी सूरत उसकी आंखों में फिरा करती है , उनकी बातें कानों में गूंजा करती हैं । कितना मनोहर स्वरूप है , कितनी रसीली बातें । साक्षात् कृष्ण स्वरूप हैं । " [20] यहां तक कि अपने पिता को मार्ग का रोड़ा समझकर बड़बड़ाने लगती है —" पिताजी उनसे नाराज हैं तो हुआ करें । मैं क्यों प्रेम-नीति से मुंह मोड़ूं ? प्रेम का संबंध केवल दो हृदयों से होता है , किसी तीसरे प्राणी को उसमें हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं । तो कभी इतनी उत्तेजित हो जाती है कि ज्ञानशंकर के मुंह पर ही कहने लगती है— प्रियतम मेरी भी यही दशा है । मैं भी इसी ताप से फूंक रही हूं । यह तन और मन अब तुम्हारी भेंट है ।" [21]

गायत्री सुंदर यौवन तथा विशाल-विपुल संपत्ति की अधिकारिणी है। भौतिक जीवन की सभी सुख-सुविधाएं उसे प्राप्त हैं। लेकिन ज्ञानशंकर के प्रति गायत्री का प्रेम नैतिक और सामाजिक दृष्टि से पवित्र तो नहीं किन्तु निश्छल अवश्य है। ज्ञानशंकर धूर्त और स्वार्थी है। गायत्री विधवा है और अपने खाली समय में मृत पति की तस्वीर देखकर किसी प्रकार संतोष कर लेती है। किन्तु ज्ञानशंकर जब उसके सामने कृष्णलीला का स्वांग रचता है, तो उसकी अतृप्त काम-वासनाओं को मानो एक मार्ग-सा मिल जाता है। एक बार कृष्णलीला में ज्ञानशंकर को कृष्ण समझकर भावावेश में उसके चरणों में गिर पड़ती है, तब वह उसका लाभ उठाते हुए, गायत्री को अपनी छाती से लगा लेता है। अकस्मात् कमरे का दरवाजा खुलता है और विद्या इस दृश्य को देखकर ठगी-सी रह जाती है। वह गायत्री को भी भला-बुरा कहती है। गायत्री का विवेक जगता है और उसे भी अपने किये पर पछतावा होता है। इस बीच में श्रद्धा और गायत्री का मेल-जोल बढ़ता है और गायत्री आत्मविश्लेषण के द्वारा यह अनुभव करती है कि शायद उसमें ही कहीं विकार था, तभी ज्ञानशंकर उसे हर मामले में उल्लू बनाने में सफल हुआ। वह श्रद्धा से कहती है —

" मच्छर के डंक से सबको ताप और जूड़ी नहीं आती। यह बाह्य उत्तेजना केवल भीतर के विकार को उभार देती है। ऐसा न होता तो आज एक भी स्वस्थ प्राणी दिखाई न देता। मुझमें यह विकृत पदार्थ था।" 22 और इसी पछतावे के कारण वह अन्त में अपनी सारी संपत्ति ज्ञानशंकर के बेटे मायाशंकर के नाम करके आत्महत्या कर लेती है।

श्रद्धा :

"प्रेमाश्रम" उपन्यास की श्रद्धा भी जमींदार घराने की है। ज्ञानशंकर के भाई प्रेमशंकर की वह पत्नी है। अपने पति से वह बहुत ही प्रेम करती है। किन्तु विदेश से लौटे हुए पति हिन्दुत्व से भ्रष्ट हो चुके हैं। अतः मन में पति के प्रति अगाध प्रेम होते हुए भी वह

लोक-मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना चाहती । यथा — " एक बार वह अधीर होकर चली कि प्रेमशंकर का हाथ पकड़कर फेर लाऊं, द्वार तक आई, पर आगे न बढ़ सकी । धर्म ने ललकार कर कहा — प्रेम नश्वर है, निस्सार है, कौन किसका पति और कौन किसकी पत्नी ? यह सब माया-जाल है ।" [23]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि श्रद्धा एक धर्मभीरु नारी है । वह अपने पति से लिखती है — " मुझे आपसे मिलते हुए अनिष्ट की आशंका होती है । धर्म को तोड़कर कौन प्राणी रह सकता है ? आपके विचार तो ऐसे नहीं, फिर आप क्यों मेरी सुधि नहीं लेते ?" [24] श्रद्धा अपने पति से दूर रहती है ; किन्तु उसका विश्वास और प्रेम पति के आत्मविकास में निरंतर स्फूर्ति एवं प्रेरणा प्रदान करते रहते हैं । उसके पति लोक-सेवा का कार्य करते हैं, श्रद्धा उसे एक उदात्त धर्म समझकर अपने आभूषण इत्यादि से उनकी जब-तब सहायता करती है । प्रेमशंकर पहले तो उसकी लोक-मर्यादा वाली बात को निष्ठुरता समझते थे, किन्तु इस सहायता से उनकी धारणा बदल जाती है — " श्रद्धा एक देवी के रूप में खड़ी मालूम होती थी । उसकी ~~सुहावनी~~ मुखश्री एक विलक्षण ज्योति से प्रदीप्त थी । उसके कोमल नेत्रों में भक्ति और प्रेम की किरणें प्रस्फुटित हो रही थीं ।" [25] श्रद्धा का विश्वास है — " प्रेम केवल हृदयों को मिलाता है, देह पर उसका वश नहीं है ।" [26] इस प्रकार हम देख सकते हैं कि श्रद्धा एक पतिव्रता, पति को भरपूर चाहनेवाली किन्तु धर्मभीरु नारी है । वह छद्म-धर्म (pseudo religion) को ही धर्म समझ रही है । किन्तु प्रेमचन्द के समय में, बल्कि अभी भी बहुत-सी स्त्रियाँ, धर्म के मूल रहस्य को न समझकर, छद्म-धर्म को ही धर्म समझकर, तदनुसार आचरण कर रही हैं ।

प्रेमचन्द की पतिव्रता-नारी विषयक अवधारणा हमें श्रद्धा में मिलती है । वह हर रात स्वयं गंगा तक पति की मंगल-

कामना के लिए जाती है । वह अपनी कमर में एक छुरा भी रखती है । सतीत्व-रक्षा को वह नारी का सबसे बड़ा आत्मसम्मान समझती है । उसका मानना है कि यदि नारी का हृदय पवित्र है, उसमें सत्य की ज्योति विद्यमान है तो " पुरुष हजार रसिया हों, हजार चतुर हों, हजार पातिया हों, हजार डोरे डालें, किन्तु सती स्त्रियों पर उसका मंत्र नहीं चल सकता । वह आँख ही क्या जो एक निगाह में पुरुष की चाल-ढाल को ताड़ न ले । जलाना आग का गुण है, पर हरी लकड़ी को किसीने जलते देखा है ?"[27] यहाँ श्रद्धा नारी को अबला मानने के पक्ष में नहीं है ।

श्रद्धा धन को पति-सेवा का माध्यम-मात्र नहीं समझती, वरन् वह मानकर चलती है कि जिन लोगों के पास धन है, उन्हें अपना धन परोपकारार्थ खर्चना चाहिए । एक स्थान पर वह गायत्री से कहती है — " तुम्हें भगवान ने धन दिया है, । उससे अच्छे कर्म करो । अनाथों और विधवाओं को पालो, धर्मशालाएँ बनवाओ, तालाब और कुएँ खुदवाओ । आसक्ति को छोड़कर ज्ञान पर चलो ।"[28]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि श्रद्धा के चरित्र में सेवा-भाव, विशुद्ध प्रेम, धार्मिकता (अंधश्रद्धा की हद तक), पातिव्रत्य, तप-साधना, लोकमांगलिक वृत्तियों आदि का अपूर्व समन्वय हुआ है ।

विलासी :

यह "प्रेमाश्रम" उपन्यास का एक सबल नारी पात्र है । वह निम्नवर्गीय कृषक मनोहर की पत्नी और बलराज की माँ है । बलराज और मनोहर दोनों अत्याचार के सामने घुटने नहीं टेकते । वह पति-पुत्र को कई बार समझाती है, लेकिन वक्त आने पर जुल्म का मुकाबला कैसे करना यह भी वह जानती है । "गोदान" की धनिया का पूर्वरूप हमें यहाँ विलासी के रूप में मिलता है ।

एक प्रकार से बिलासी मनोहर के व्यक्तित्व की आपूर्ति करती है और इस अर्थ में सच्ची अर्द्धांगिनी है । मनोहर में सहनशीलता और कुशलता का अभाव है । इन दोनों की पूर्ति बिलासी करती है । गाँव में घी के रुपये बंटते हैं, तो मनोहर नहीं लेता और जमींदार के कारिन्दे से लड़ पड़ता है । किन्तु बिलासी व्यवहार-कुशल है । तनिक झुककर चलने में वह अपनी हेठी नहीं समझती । पति से वह कहती है —" तुम्हारी आदत है कि जब देखो एक न एक बखेड़ा मचाये ही रहते हो । तो क्या अकड़ने से ऊँचे हो जायँगे ? थोड़ा-सा घी हाँड़ी में है, दो-चार दिन में और बटोर लूंगी, जाकर तौल आना ।" 29

वह जानती है कि उसके पति तथा जवान बेटे की अकड़ आत्म-सम्मान के अतिरिक्त कुछ नहीं है, तो भी वह स्वयं क्षमा-याचना करने चौपाल पहुँचती है और कारिन्दे गौसखां को करबद्ध प्रार्थना करती है —" सरकार, कहीं की न रहूँगी । जो डांड चाहे लगा दीजिए, जो चाहे सजा दीजिए, मालिकों के कान में यह बात न डालिए ।" 30

इस तरह बिलासी व्यवहार-कुशल, शान्त और नम्र है परन्तु उसके आत्म-सम्मान पर जब चोट होती है तो वह भी चित्कार कर उठती है । उसे अपने बेटे और पति पर गर्व है कि वे उसके सम्मान की रक्षा करने के लिए समर्थ हैं । जब गौसखां उसके मवेशियों को कांजीहौस ले जाने की बात करता है तब गौसखां और बिलासी के बीच कुछ कहा-सुनी होती है । गौसखां बिलासी की गर्दन पकड़कर उसे जोरका धक्का देता है । तब बिलासी अपमान का बदला लेने के लिए मनोहर को ललकारती है और उसीमें गौसखा की हत्या हो जाती है । मनोहर और बलराज को गिरफ्तार कर लिया जाता है, साथ ही गांव के कुछ निर्दोष लोगों को भी बन्द कर दिया जाता है । मनोहर

कारावास में आत्महत्या कर लेता है। उस हृदय-विदारक घटना के बाद भी बिलासी टूटती नहीं है। वह सहनशीलता का परिचय देती है। वह डरपोक नहीं है। उसमें स्वाभिमान की भावना कूट-कूट कर भरी है।

सोफिया :

सोफिया "रंगभूमि" उपन्यास की नायिका है। उसके पिता जानसेवक एक स्वार्थी, धन-लोलुप उद्योगपति हैं। माँ कट्टर ईसाइयन है। परन्तु सोफिया में धर्म को लेकर एक प्रकार की उदारता और आदर्शवादिता के भाव मिलते हैं। धर्म की बात पर उसकी अपनी माँ से लड़ाई हो जाती है और वह उसे अपने घर से निकाल देती है। सोफिया घर से जा रही थी तब रास्ते वह एक अग्निकांड का दृश्य देखती है। उसमें वह एक व्यक्ति को आग से बचाने के लिए कूद पड़ती है, पर स्वयं आग की चपेट में आ जाती है। जब उसे होश आता है तो वह अपने को कुंवर भरतसिंह के महल में पाती है। कुंवर साहब के पुत्र विनयसिंह ने सोफिया की जान बचाई है। यह ज्ञात होने पर सोफिया विनय को श्रद्धाभाव से देखने लगती है और शनैः शनैः वह श्रद्धा-भाव प्रेम में बदल जाता है। वह विनयसिंह से प्रेम करती है और उसे चिरस्थायी रूप प्रदान करने के लिए अनेक प्रकार के कष्ट सहती है। अपने प्रिय-पात्र के लिए वह सबकुछ बलिदान करने को उद्यत दिखती है। जब अपने भाई प्रभुसेवक से उसे ज्ञात होता है कि विनय भी उसे प्रेम करता है तब वह उससे कहती है — "वह मुझे अपने प्रेम के योग्य समझते हैं, तो यह मेरे लिए गौरव की बात है। ऐसे साधु-प्रकृति, ऐसे त्यागमूर्ति, ऐसे सदुत्साही पुरुष की प्रेमपात्री बनने में कोई लज्जा नहीं ... यह वरदान आज मुझे मिल गया है, तो यह मेरे लज्जा की नहीं आनंद की बात है।" 31

इससे एक बात तो साफ तौर पर उभरती है कि सोफिया में धार्मिक कट्टरता बिलकुल नहीं है । वह धर्म को महत्व न देकर प्रेम को महत्व देती है । एक स्थान पर वह विनय से साफ शब्दों में कहती है —" मैंने तुम्हारा दामन पकड़ लिया है , और अब उसे किसी तरह नहीं छोड़ सकती , चाहे तुम ठुकरा ही क्यों न दो ।" [32] सोफिया के चरित्र में अन्ततक प्रेम की मूल भावना पाई जाती है । उसकी भावनाओं में जो स्थिरता है उसमें लौकिकता और पारलौकिकता दोनों के दर्शन होते हैं । उसका मन इतना विशाल और हृदय इतना उदार है कि अपने किसी निकटतम व्यक्ति द्वारा किसी निर्धन-गरीब का अपमान हो तो वह स्वयं लज्जा का अनुभव करती है । इसलिए उसकी माँ जब सूरदास को अपमानित करती है तो वह बहुत शर्मिन्दगी महसूस करती है ।

विनयसिंह की माता रानी जाह्नवी को विनय-सोफिया का प्रेम उपयुक्त नहीं लगता , अतः वह धोखे से विनय को जसवंतनगर भेज देती है । तब सोफिया भी मि. क्लर्क के साथ प्रेम का स्वांग रचाकर जसवंतनगर पहुंच जाती है । वहां जैल में विनयसिंह से मिलकर दिल्ली भाग जाने का प्रस्ताव रखती है । इस प्रस्ताव में लुक-छिपकर प्रेम-तृष्णा शान्त करने की कोई वासनात्मक भावना नहीं है । सोफिया का विनय के प्रति जो प्रेम है वह उदात्त है । उसमें किसी किस्म के चारित्रिक पतन का अवकाश नहीं है । पांडेपुर सत्याग्रह में विनय जब स्वयं को गोली मारकर शहीद हो जाता है , तब फिर सोफिया की मां मौका देखकर सोफिया के सामने क्लार्क के साथ विवाह का प्रस्ताव रखती है । किन्तु सोफिया उस प्रस्ताव को न मानते हुए आत्महत्या का वरण करती है । इस तरह हम देख सकते हैं कि सोफिया प्रथमतः प्रेमिका है । उसमें धार्मिक कट्टरता का अभाव है और अपने प्रेमभाव को लेकर उसमें विद्रोह तक का माद्दा है । एक स्थान पर वह कहती है —" मैं भी हिन्दू धर्म पर जान देती हूं । जो आत्मिक शांति

कहीं न मिली , वह गोपियों की प्रेमकथा में मिल गयी । वह प्रेम का अवतार , जिसने गोपियों को प्रेमरस पान कराया ... उसीकी चेरी बनकर जाऊँगी , तो वह कौन हिन्दू है जो मेरी उपेक्षा करेगा ?"[33] डा. मनोहर बंदोपाध्याय सोफिया के चरित्र के संदर्भ में बिलकुल ठीक कहते हैं —

" द मोस्ट ब्रिलियण्ट कैरेक्टर इन द नावेल नेक्स्ट टू सूरदास, इज़ द प्रिटी आईडियालिस्ट गर्ल , सोफिया. "रंगभूमि" इज़ परहेप्स द फर्स्ट हिन्दी नावेल व्हीच हेज़ पोर्ट्रेड ए क्रिश्चियन हिरोइन एण्ड क्रिएटेड हर सो पावरफुल आन एन एक्सपान्सिव स्केल. शी इज़ द हैराल्ड आफ मोडर्निटी एण्ड एक्सेप्ट्स नथिंग बेट फेइल्स द स्क्रुटिनी आफ हर रीज़न. ह ... हर लव फोर विनय इज़ फुल एण्ड स्टेडफास्ट. .... हर लाईफ इज़ मिनिंगलेस विथाउट विनय आफ्टर हूज़ डेथ शी टू एन्डस हर लाईफ. द आथर हेज़ अटेम्प्टेड टू डिपिक्ट थेट द हेल्थी एलिमेन्ट्स आफ इण्टर-रिलिजियस युनिटी आर आलरेडी थेर इन न्यूअर जनरेशन आफ इण्डियन पिपल ; आल थेट इज़ नीडेड इज़ टू रिसपेक्ट इट एण्ड इण्टिग्रेट धीस युनिटी."[34]

वस्तुतः सोफिया का आलेखन प्रेमचन्द की वस्तुवादी दृष्टि का परिणाम है । उस समय अनेक पाश्चात्य महिलाएं भारत और भारतीय संस्कृति की ओर आकृष्ट हो रही थीं । मादाम ब्लावत्स्की तथा श्रीमती एनी बेसण्ट और भगिनी निवेदिता इसके ज्वलंत उदाहरण हैं । अतः सोफिया का हिन्दू धर्म की ओर आकृष्ट होना कोई अकारण नहीं है । आज भी उनकी प्रेमलक्षणा भक्ति कइयों को आकर्षित कर रही है ।

सोफिया के संदर्भ में डा. रामविलास शर्मा लिखते हैं — "सोफिया एक मानवतावादी विचारों की लड़की है । वह धर्म के बंधन नहीं मानती । "रंगभूमि" शायद हिन्दी का पहला उपन्यास है जिसमें एक ईसाई लड़की और एक हिन्दू लड़के का प्रेम दिखाया

गया है । प्रेमचन्द प्रेम-संबंध को धार्मिक पाबंदियों से ऊँची चीज़ समझते थे , इसलिए उन्हें कोई तोड़े तो इसे अच्छा मानते थे । आगे चलकर "कर्मभूमि" में उन्होंने मुसलमान लड़की सकीना से हिन्दू लड़के अमरकान्त का प्रेम दिखाया है ।"[35]

रानी जाह्नवी :

रानी जाह्नवी "रंगभूमि" उपन्यास का एक तेजस्वी नारी पात्र है । वह कुँवर भरतसिंह की पत्नी और कुँवर विनयसिंह की माँ है । रानी होते हुए भी उन्हें राजसी ठाठबाठ या वैभव-विलास की लालसा नहीं है । वह एक सच्ची वीर प्रकृता क्षत्राणी है । विनय का जन्म नहीं हुआ था तभी से उनके मन में एक ऐसी साध थी कि उन्हें एक ऐसा बेटा हो जो देश और जाति के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दे । यथा —" मेरी कोख से भी कोई ऐसा पुत्र जन्म लेता , जो अभिमन्यु , दुर्गादास और प्रताप की भाँति जाति का मस्तक ऊँचा करता । मैंने व्रत लिया है कि पुत्र हुआ तो देश और जाति के हित के लिए समर्पित कर दूँगी ।"[36]

रानी जाह्नवी अपने पुत्र विनयसिंह में इन्हीं संस्कारों का सिंचन करती है । और विनयसिंह जिस तरह देश और जाति की सेवाहेतु आगे बढ़ रहा है उससे रानी को पूर्ण संतोष है । रानी निरंतर यही चाहती हैं कि विनय जाति-रक्षा के लिए अपने प्राण की भी परवाह न करें । वह कई बार कहती हैं कि विनय प्राण-भय अथवा ऐश्वर्य-लालसा के कारण कभी पीछे कदम हटाएगा तो उन्हें बहुत दुःख होगा । अतः विनय और सोफ़िया में जब प्रेम-भाव अंकुरित होता है , तब वह भरसक कोशिश करती हैं कि वे दोनों अलग हो जाएँ और इसलिए भीषण गर्मी के मौसम में भी वह विनय को जसवंतनगर (राजपूताने में) भेज देती हैं । रानी सोफ़िया को भी साफ़-साफ़ शब्दों में कहती है —" सोफी , तुम

मुझे कृतघ्न समझोगी, मगर मैंने तुम्हें अपने घर में रखकर बड़ी भूल की। ऐसी भूल मैंने कभी न की थी। मैं न जानती थी कि तुम आस्तीन का साँप बनोगी। इससे बहुत अच्छा होता कि विनय उसी आग में जल गया होता।"[37] आगे वह विनय को लेकर उन्होंने जो स्वप्न संजोया है उसके संदर्भ में संकेतित करती है — "मैं विनय को ऐसा मनुष्य बनाना चाहती हूं, जिस पर समाज को गर्व हो, जिसके हृदय में अनुराग हो, साहस हो, धैर्य हो, जो संकटों के सामने मुंह न मोड़े, जो सेवा के हेतु सदैव सिर को हथेली पर लिये रहे, जिसमें विलासिता का लेश भी न हो, जो धर्म पर अपने को मिटा दे। मैं उसे सपूत बेटा, निश्छल मित्र और निःस्वार्थ सेवक बनाना चाहती हूं। मुझे उसके विवाह की लालसा नहीं, अपने पोतों को गोद में खिलाने की अभिलाषा नहीं। देश में आत्मसेवी पुरुषों और संतान-सेवी माताओं का अभाव नहीं है। धरती उनके बोझ से दबी जाती है। मैं अपने बेटे को सच्चा राजपूत बनाना चाहती हूं। आज वह किसीकी रक्षा के निमित्त अपने प्राण दे दे, तो मुझसे अधिक भाग्यवती माता संसार में न होगी।"[38]

इस तरह हम देखते हैं कि रानी जाह्नवी अन्य राज-माताओं से अलग हैं, विशिष्ट हैं। उनकी इच्छाएं, उनके सपने सामान्य माताओं जैसे नहीं है। वह राष्ट्रीयता के रंग में पूरी तरह रंगी हुई हैं। वह सोफिया को विनय से अलग रखना चाहती हैं क्योंकि वे समझती हैं कि सोफिया का प्रेम-पाश उसे उसके लक्ष्य से दूर ले जायेगा। अतः वे सोफिया को कहती हैं — "तुम मेरे इस स्वर्ण-स्वप्न को विच्छिन्न कर रही हो। मैं तुमसे सत्य कहती हूं सोफी, अगर तुम्हारे उपकार के बोझ से दबी न होती, तो तुम्हें इस दशा में विष देकर मार्ग से हटा देना अपना कर्तव्य समझती। मैं राजपूतनी हूं, मरना भी जानती हूं और मारना भी जानती

हूं । इससे पहले कि मैं तुम्हें विनय से पत्र-व्यवहार करते देखूं , मैं तुम्हारा गला घोंट दूंगी । मैं तुमसे भिक्षा मांगती हूं , विनय को अपने प्रेम-पाश में फंसाने की चेष्टा न करो , नहीं तो इसका फल बुरा होगा । तुम्हें ईश्वर ने बुद्धि दी है , विवेक दिया है । विवेक से काम लो । मेरे कुल का सर्वनाश न करो ।" 39

विनय पांडेपुर सत्याग्रह में जब आत्महत्या कर लेता है , तब रानी जाह्नवी को शोक नहीं होता । बेटे की मृत्यु पर रोकर वह उस वीर आत्मा की मृत्यु का अपमान नहीं करना चाहती । इस प्रकार उनके चरित्र का निर्माण भारत की वीर क्षत्राणियों के आदर्श पर हुआ है ।

<u>इन्दु :</u>

इन्दु रानी जाह्नवी की बेटी है । इन्दु का विवाह राजा महेन्द्र से होता है जो बनारस म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन हैं । मां के आदर्शवाद का कुछ प्रभाव उस पर भी पड़ा है । वह सरल, कोमलहृदया , स्वातंत्र्य-प्रिय और स्वाभिमानी नारी है । उसे भी देशसेवा और समाजसेवा अच्छे लगते हैं , बल्कि इस संदर्भ में वह अपने पति से अधिक आदर्शवादी है । उसका अपना एक सुदृढ़ वैचारिक पहलू है । एक स्थान पर वह कहती है -" स्त्री का कर्तव्य है कि अपने पुरुष की सहगामिनी बने । पर प्रश्न यह है कि क्या स्त्री का अपने पुरुष से पृथक कोई अस्तित्व नहीं है ? इसे बुद्धि स्वीकार नहीं करती ।×××" 40

सामान्य हिन्दू-स्त्री के संस्कारों के कारण वह अनेक बार अपने पति से समझौता करती है , किन्तु उत्तरोत्तर उसका दाम्पत्य-जीवन वैचारिक मतभेद के कारण दुर्वह होता जाता है , तब वह पति से झगड़कर मायके चली जाती है । इन्दु माता की तरह ज्यादा आदर्शवादी या सिद्धान्तवादी भी नहीं है । वह अत्यन्त भावुक नारी है । उसमें धैर्य का भी अभाव है । वह शीघ्र ही आवेश में

आ जाती है और दूसरे से प्रभावित भी हो जाती है । उसके पति छोटे-से छोटे खर्च का भी हिसाब लिखना आवश्यक समझते हैं और इससे चिढ़कर वह अपने पति को "कृपण" भी कहती है । बार-बार अपने दाम्पत्य-जीवन में परवशता, पराधीनता और अपमान का अनुभव करना उसे कष्टदायक लगता है । अतः बात-बात पर वह अपने पति को पद-त्याग के लिए कहती है , पर उसे क्या मालूम कि पति उस पद पर क्यों चिपके हुए हैं । सूरदास की जमीन वाले मामले में भी वह सूरदास का पक्ष लेती है । इससे उसके मन में गरीबों के प्रति जो मानवीयता का भाव है वह उजागर होता है । इन्दु में कुछ नारी-सहज ईर्ष्या तथा अभिमान और बदले की भावना भी है । जब उसे ज्ञात होता है कि वह जिसे एक साधारण लड़की समझती थी उस सोफिया की मंगनी जिलाधीश मि. क्लार्क से होनेवाली है, तो वह अपने पति को उकसाती है — "आप तुरंत गवर्नर को मि. क्लार्क के न्याय-विरुद्ध हस्तक्षेप की सूचना दीजिए । हमारे पूर्वजों ने अंग्रेजों की उस समय प्राण-रक्षा की थी, जब उनकी जानों के लाले पड़े हुए थे । सरकार उन एहसानों को मिटा नहीं सकती । नहीं, आप स्वयं जाकर गवर्नर से मिलिए, उनसे कहिए कि मि. क्लार्क के हस्तक्षेप से मेरा अपमान होगा, मैं जनता की दृष्टि में गिर जाऊंगा और शिक्षित वर्ग को भी सरकार में लेश-मात्र विश्वास न रहेगा । साबित कर दीजिए कि किसी रईस का अपमान करना दिल्लगी नहीं है ।" 5।

इस तरह हम देख सकते हैं कि इन्दु में भी जातीय अभिमान की भावना है । माता जाह्नवी की तरह उसका व्यक्तित्व असाधारण तो कहीं नहीं है, किन्तु कहीं-कहीं वह अपनी माता का अनुकरण कर रही हो ऐसा अवश्य प्रतीत होता है । वह "रंगभूमि" उपन्यास की एक विद्रोहिणी नारी है, किन्तु उसका विद्रोह उच्छृंखलता की सीमा को स्पर्श नहीं करता ।

मनोरमा :

"कायाकल्प" उपन्यास की मुख्य नायिका मनोरमा है। वह जगदीशपुर के दीवानसाहब की बेटी है। चक्रधर मनोरमा को "ट्यूशन" पढ़ाने जाते हैं। चक्रधर की सेवा-भावना और आदर्शवादिता से प्रभावित होकर वह उससे प्रेम करने लगती है, किन्तु जब वह अनुभव करती है कि चक्रधर की परोपकारी भावनाएं धनाभाव के कारण पूर्ण नहीं हो पा रही है, तब वह राजा विशालसिंह से विवाह करके उनकी महारानी बन जाती है। इस प्रकार वह न केवल चक्रधर, बल्कि उसके आदर्शों को भी चाहती है। एक स्थान पर वह कहती है — " मैं आपको भूल जाऊंगी। असंभव है। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि पूर्व जन्म में मेरा और आपका किसी-न-किसी रूप में साथ था। पहले ही दिन से मुझे आपसे इतनी श्रद्धा हो गई, मानो पुराना परिचय हो। मैं जब कभी कोई बात सोचती हूं, तो आप उसमें अवश्य पहुंच जाते हैं। अगर ऐश्वर्य पाकर आपको भूल जाने की संभावना हो तो मैं उसकी ओर आंख उठाकर भी न देखूंगी।" [42]

इस पर चक्रधर जब मुस्कराकर कहते हैं — " जब हृदय यही रहे तब तो।" [43] इस पर मनोरमा कहती है —" यही रहेगा। मैं मरकर भी आपको भूल नहीं सकती हू।" [44] इस प्रकार मनोरमा हृदय से, भावनाओं और आदर्शों से तो चक्रधर को चाहती है, किन्तु अपने ही प्रेमी के आदर्शों और सपनों की पूर्ति हेतु विवाह राजा विशालसिंह से करती है। उसका यह प्रेम पवित्र है, पावन है। प्रेमचन्द की नारी-विषयक भावना के अनुरूप है। कर्तव्य की वेदी पर वह अपने प्रेम की बलि चढ़ा देती है। इस संदर्भ में डा. भरतसिंह के निम्नलिखित विचार उद्धरणीय रहेंगे — "प्रेमचन्द के साहित्य में नारी-प्रेम के उस स्वरूप के, जिससे वह सरस, आह्लादक एवं प्रेरणाप्रद बन जाता है, उसके अनेक उदाहरण उपलब्ध हो जाते हैं। कहीं वह प्रेम माता के निर्विकार वात्सल्य के रूप में छलका है, तो कहीं पति-प्रेम के रूप में प्रवाहित हुआ है।

कहीं प्रेमिका की भीनी चितवन के रूप में उसने अपने प्रेमी को छला है, तो कहीं वह राष्ट्रीय भावना से उद्‌बुद्ध होकर राष्ट्र की पावन बलिवेदी पर ही समर्पित हो गया है। लेकिन यह उनकी सर्वोपरि विशेषता रही है कि वह सर्वत्र पवित्र बना रहा। कहीं पर भी उसमें आंशिक अपावनता का लेश भी नहीं आ पाया है।"[45]

मनोरमा सुंदर है, शालीन है, निर्भिक और विनयशील है। उसके पास धनाभाव नहीं है, फिर भी विलासिता का भाव उसे छू तक नहीं गया है। उसमें जो प्रजा-सेवा का भाव है, उसे हम गांधी-वादी प्रभाव कह सकते हैं। उस समय अनेक ऊँचे और कुलीन परिवारों की महिलाएँ सेवा-प्रवृत्ति की ओर उन्मुख हो रही थी। वह स्पष्ट-वादिनी भी है। उसने राजा विशालसिंह को पहले ही कह दिया था — "मुझे आपसे प्रेम नहीं है, और न हो सकता है।"[46]

मनोरमा राजा साहब से विवाह कर लेती है, पर प्रेम की अन्तर्वेदना को बड़े साहस के साथ थामे रहती है। गुणशीला मनो-रमा स्वामी को स्वादिष्ट भोजन बनाकर खिलाती है। पति के प्रति जो उसके कर्तव्य हैं उनका निर्वाह करती है, किन्तु दूसरी तरफ चक्रधर के प्रति जो उसका भावनात्मक प्रेम (प्लेटोनिक लव) है, उसकी थाती को भी अपने हृदय से लगाकर रखती है। चक्रधर जब कैद से मुक्त हो जाता है तब उसके स्वागत को भी वह जाती है। वह चक्रधर से कहती है कि किसी विलास-भावना से प्रेरित होकर उसने राजा साहब से विवाह नहीं किया था, किन्तु एक तरह से उसने प्रेम की पावन बलिवेदी पर अपने आप को न्योछावर कर दिया था। यथा — "हाँ, इतना कह सकती हूँ कि जब मैंने देखा कि आपकी परोपकारी कामनाएँ धन के बिना निष्फल हुई जाती हैं, जो कि आपके मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है, तो मैंने उसी बाधा को हटाने के लिए यह बेड़ी अपने पैरों में डाली। मैं जो कुछ कह रही हूँ उसका एक-एक अक्षर सत्य है।"[47]

इस प्रकार हम देखते हैं कि चक्रधर से प्रेम करने वाली मनोरमा उसकी पत्नी अहिल्या से भी प्रेम करती है और उसके पुत्र शंखधर को भी अपना मातृ वात्सल्य-भाव देती है। पति से कष्ट पाने पर भी वह उसका कभी अहित नहीं चाहती। राजा साहब के कई रानियाँ थीं, फिर भी उन्हें पुत्र-प्राप्ति नहीं होती। अतः मनोरमा के बाद भी वे पुनः विवाह के लिए तैयार हो जाते हैं। मनोरमा के रहने का बन्दोबस्त दूसरी जगह किया जाता है। इन सब विपत्तियों में भी उसके चरित्र का कुंदन अधिक प्रदीप्त होकर बाहर आता है। राजा साहब के प्रति भी कोई वितृष्णा का भाव न रखते हुए अपने क्षमाशील चरित्र का परिचय देती है। वह कहती है —" जो स्त्री अपने दिल में पति से कीना रखे, उसे विष खाकर प्राण दे देना चाहिए। हमारा धर्म कीना रखना नहीं, क्षमा करना है। मेरा विवाह हुए बीस वर्ष से अधिक हुए। बहुत दिनों तक उनकी मुझ पर कृपा रही। अब वह मुझसे तने हुए हैं। शायद मेरी सूरत से भी उन्हें घृणा हो। लेकिन आज तक उन्होंने मुझे एक भी कठोर शब्द नहीं कहा। संसार में ऐसे कितने पुरुष हैं, जो अपनी जबान को इतना संभाल सकते हों ?"[48]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनोरमा प्रेम, धैर्य, विवेक और क्षमा की देवी है। उसमें स्वाभिमान की भावना भी है। वह अपने सतीत्व की रक्षा में सावधान है। मन से चक्रधर को चाहते हुए कहीं क्षण-भर के लिए भी उसमें चारित्रिक स्खलन नहीं दिखता।

देवप्रिया :

देवप्रिया जगदीशपुर की रानी है। वह विधवा हो गई है। किन्तु उसे अपने राज्य के किसी काम-काज की कोई फ़िकर-चिन्ता नहीं है। वह भोग-विलास का जीवन व्यतीत करती है। प्रेमचन्द के औपन्यासिक नारी-पात्रों में देवप्रिया को अपवाद-स्वरूप ही समझना चाहिए, क्योंकि वह एक विपुलवासनावती नारी है। उसकी जन्म-जन्मांतर तक चलती रहती है। मनोरमा

जहाँ एक सती-साध्वी स्त्री है, देवप्रिया उसका विलोम है। इसके द्वारा प्रेमचन्द ने सामन्ती ऐश्वर्य व वैभव के वातावरण में वासना-जनित चिर-अतृप्ति का बड़ा ही भीषण चित्र उपस्थित किया है। उसके जीवन की सर्वाधिक आनंदमयी घड़ियाँ वे होती हैं जिनमें वह युवक-युवतियों के संग प्रेम-क्रीड़ा कर रही होती है। एक बार एक राजकुमार आता है, जो अपने को रानी का पूर्व-जन्म का पति बताता है। रानी उसे प्रस्ताव पर उस राजकुमार के साथ चली जाती है। अपना राज्य वह विशालसिंह को सौंप देती है। इस प्रकार रानी देवप्रिया का चरित्र परस्पर विरोधी तत्वों से निर्मित हो ऐसा लगता है। एक तरफ जहाँ वह विपुलवासनावती है, वहाँ दूसरी तरफ स्वयं को उसका पूर्व-जन्म का पति बतानेवाले राजकुमार के साथ सबकुछ छोड़-छाड़कर वह चल देती है।

"कायाकल्प" उपन्यास का नायक चक्रधर अज्ञात जीवन बिताने के लिए घरबार छोड़कर चला जाता है। तब उसका पुत्र शंखधर अपने पिता को ढूंढने के लिए निकल पड़ता है। किसी अज्ञात शक्ति के कारण वह रानी देवप्रिया के पास पहुँच जाता है। दोनों खूब प्रेम से मिलते हैं, क्योंकि शंखधर पूर्व-जन्म में देवप्रिया का पति था। देवप्रिया अब "कमला" बनकर उसके साथ विवाह कर लेती है। लेकिन यह मिलाप बहुत दिनों तक नहीं चलता, क्योंकि शंखधर यह कहते हुए शरीर त्याग देता है कि — "अब हम तब मिलेंगे जब हममें वासना न रहेगी।"[49] इस तरह अचानक शंखधर की मृत्यु हो जाती है। इस शोकपूर्ण समाचार से राजा विशालसिंह की भी मृत्यु हो जाती है। अहिल्या भी पति की राह तकते-तकते मर जाती है। आखिरी वक्त चक्रधर आ जाते हैं। "अहिल्या ने एक बार तृषित, दीन एवं तिरस्कारमय नेत्रों से पति की ओर देखा और आँखें सदैव के लिए बन्द हो गयीं।"[50] रानी देवप्रिया पुनः राज्य की बागडोर संभाल लेती है। विलासिनी देवप्रिया अब तपस्विनी देवप्रिया हो गई है।

प्रेमचन्द -साहित्य के लगभग तमाम-तमाम आलोचकों को — डा. हंसराज रहबर, डा. रामविलास शर्मा, डा. मन्मथनाथ गुप्त, डा. चारुकान्त देसाई आदि आदि — रानी देवप्रिया का चरित्र विचित्र और अनबूझ पहेली-सा लगा है। वह एक जादूगरनी लगती है। विनोद और विलास ही उसके जीवन का उद्देश्य है। वह बार-बार विधवा होती है और नये पति को पाकर सधवा बन जाती है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में देवप्रिया ही एक ऐसी नारी है जो अपने दुस्साहसों का चमत्कार दिखाकर पाठकों को चमत्कृत करती रहती है। उसका चरित्र, उसके पूर्व जन्म के पति और प्रेमी, ये सब मिलकर एक तिलस्म की रचना करते हैं।

अहिल्या :

अहिल्या आग्रा के यशोदानंदन की पालिता कन्या है। आग्रा के साम्प्रदायिक दंगों में यशोदानंदन मारे जाते हैं। अहिल्या को मुसलमान उठाकर ले जाते हैं। परन्तु यशोदानंदन के मित्र और मुसलमानों के नेता ख्वाजा साहब अहिल्या की सहायता करते हैं। अहिल्या की माँ वागीश्वरी इस बात से परेशान और चिंतित है कि अब अहिल्या के साथ विवाह कौन करेगा। संयोगवश चक्रधर वहाँ पहुँचता है। वह उसे अंगीकृत कर अपने घर ले जाता है। परन्तु चक्रधर के घरवाले उसे नहीं अपनाते हैं, अतः वह अहिल्या को लेकर इलाहाबाद चला जाता है। यहाँ पर उनको शंखधर नामक पुत्र होता है। यहाँ तक अहिल्या का जो चरित्र है उसमें वह गरीब पति के साथ रहनेवाली शील और विनयवती है। अहिल्या अपने को अनाथ, अभागिनी, कुल और जाति-रहित एक कलंकित नारी समझती थी, जिससे शायद ही कोई विवाह करे। परन्तु चक्रधर जब उसको अपना लेता है, तब वह अपने भाग्य को सराहती है। किन्तु बाद में उसके चरित्र में एक गजब का बदलाव आता है। जब उसे ज्ञात होता है कि वह

राजा विशालसिंह और मनोरमा की बीस साल पहले खोयी हुई बेटी है, तब वह घमंडी और कटुभाषिणी हो जाती है। पिता की संपत्ति का एक भाग जब उसे मिलता है तब वह भोग-विलास की ओर प्रवृत्त हो जाती है और पति-पुत्र दोनों की उपेक्षा करने लगती है। परन्तु उसकी पालक माता वागीश्वरी एक सच्ची भारतीय सती नारी है। वह अहिल्या को समझाती है — "पति-प्रेम से वंचित होकर स्त्री के उद्धार का कौन उपाय है, बेटी? पति ही स्त्री का सर्वस्व है। जिसने अपना सर्वस्व खो दिया, उसे सुख कैसे मिलेगा? जिसको लेकर तूने पतिका त्याग किया, उसका त्याग कर ही तू पति को पाएगी। तू इतनी कर्तव्य-भ्रष्ट कैसे हो गयी, यह मेरी समझ में नहीं आता। यहाँ तो तू धन पर इतना जान न देती थी। ईश्वर ने तेरी परीक्षा ली और तू उसमें चूक गई। जब तक धन और राज्य का मोह न छोड़ेगी, तुझे उस त्यागी पुरुष के दर्शन न होंगे।"[51] अंत में मृत्यु शय्या पर चक्रधर से उसकी भेंट होती है।

लौंगी :

लौंगी "कायाकल्प" उपन्यास का एक सशक्त नारी-पात्र है। वह जगदीशपुर के दीवान हरिसेवकसिंह की रखैल है। दीवान साहब की पत्नी का देहान्त हो गया है। ऐसी स्थिति में दीवान साहब को संभालने का काम लौंगी करती है। वह मनोरमा को भी माँ का प्यार और वात्सल्य देती है। जीवन-संगिनी का अभाव दीवान साहब को वह कभी महसूस नहीं होने देती। ब्याहता औरत न होकर भी, वह ब्याहता से कुछ अधिक है। वह अपने सेवा-भाव के कारण ही उनकी गृहिणी बन जाती है। ठाकुर साहब उसकी इसी सेवा पर ही रीझे थे, उसके रूप या यौवन पर नहीं। मनोरमा भी उसके संदर्भ में कहती है — "मनोरमा लौंगी कहारिन का दूध पीकर बड़ी न होती, तो आज रानी मनोरमा कैसे होती?"[52] हरिसेवक भी अपनी पुत्री मनोरमा को कहते हैं — "नोरा, तुम सचमुच दया की देवी हो। देखो, अगर लौंगी आए और मैं न

हूं , तो उसकी खबर लेती रहना । उसने मेरी बड़ी सेवा की है । मैं कभी उसके एहसानों का बदला नहीं चुका सकता । गुरुसेवक (उनका पुत्र) उसे सताएगा , उसे घर से निकालेगा , लेकिन तुम उस दुखिया की रक्षा करना । मैं चाहूं तो अपनी सारी सम्पत्ति उसके नाम लिख सकता हूं । यह सब जायदाद मेरी पैदा की हुई है । मैं अपना सबकुछ लौंगी को दे सकता हूं , लेकिन लौंगी कुछ न लेगी । वह दुष्टा मेरी जायदाद का एक पैसा भी न छुएगी । वह अपने गहने-पाते भी काम पड़ने पर इस घर में लगा देगी । बस , वह सम्मान चाहती है । कोई उसके साथ आदर के साथ बोले और उसे लूट ले । वह घर की स्वामिनी बनकर भूखों मर जाएगी , लेकिन दासी बनकर सोने का कौर भी न खाएगी । ... गौरा , जिस दिन से वह गई है , मैं कुछ और ही हो गया हूं । जान पड़ता है , मेरी आत्मा कहीं चली गई है ।" [53]

लौंगी साक्षात् लक्ष्मी है । वह तप , त्याग और सेवा की मूर्ति है । दीवानसाहब का जितना ध्यान वह रखती थी , कदाचित् उनकी ब्याहता पत्नी भी उतना ध्यान न रखती । उनके खानपान का खूब ध्यान रखती थी । दिनभर में दो-ढाई सेर दूध उनके पेट में किसी-न-किसी तरह पहुंच जाता था । आध पाव के करीब घी भी पहुंचता होगा । पति-सेवा का सिद्धान्त हमेशा उसके सामने रहता । वह कहा करती थी — "घोड़े और मर्द कभी बूढ़े नहीं होते , केवल उन्हें रातिब मिलना चाहिए ।" [54] मनोरमा उसके बारे में बिलकुल सही कहती है — "जब से अम्मा का स्वर्गवास हुआ , दादाजी ने (दीवानसाहब ने) अपने को उसके हाथों बेच दिया । लौंगी ने न संभाला होता , तो अम्माजी के शोक में दादाजी प्राण दे देते । मैंने किसी विवाहित स्त्री में इतनी पति-भक्ति नहीं देखी । अगर दादाजी को बचाना चाहते हो , तो जाकर लौंगी अम्मा को अपने साथ लाओ ।" [55]

इस तरह हम देख सकते हैं कि लौंगी प्रेमचन्द की एक दिव्य सृष्टि है। उनके नारी-चरित्रों में लौंगी का चरित्र एक आदर्श प्रेमिका का है। लौंगी के मुकाबले में कोई स्त्री-चरित्र नहीं ठहर सकता जिसमें आत्म-समर्पण की ऐसी गहरी भावना हो। एक स्थान पर वह गुरुसेवक को कहती है —" चार भांवरे फिर जाने से ही विवाह नहीं हो जाता। मैंने अपने मालिक की जितनी सेवा की है और करने को तैयार हूं, उतनी कौन ब्याहता करेगी ? लाये तो हो बहू, कभी उठकर एक लुटिया पानी भी देती है ? खाई है कभी उसकी बनाई हुई कोई चीज ? नाम से कोई ब्याहता नहीं होती, सेवा और प्रेम से होती है।" 56

डा. महेन्द्र चतुर्वेदी लौंगी के संदर्भ में लिखते हैं —" हरिसेवक-लौंगी का युग्म वैवाहिक संबंधों का आदर्श प्रस्तुत करता है। लौंगी कर्तव्य एवं एकनिष्ठ प्रेम की प्रतिमा है जिसने स्वार्थ की परिधि से बाहर आकर अपने जीवन को सुखी बनाया है। उसमें समर्पणशील नारीत्व के उज्ज्वल स्वरूप के दर्शन होते हैं।" 57

डा. हंसराज रहबर ने "कायाकल्प" की बड़ी ही कटु आलोचना की है, किन्तु वे भी लौंगी के चरित्र से तो प्रभावित हैं ही। यथा—" हमें भई यहाँ (कायाकल्प में) केवल लौंगी का चरित्र अधिक आकर्षित करता है। वह ठाकुर हरिसेवक की रखैल है, विवाहिता स्त्री नहीं है। लेकिन दोनों में जो प्रेम है, उसकी मिसाल नहीं मिलती। लौंगी तीर्थ-यात्रा को क्या गई, हरिसेवक की जान निकल गई। जैसे वह उनके प्राण भी अपने साथ ले गई हो।" 58 तभी तो वह गुरुसेवक को ललकार कर कह सकती है —" तो बच्चा सुन, जब तक मालिक जीता है, लौंगी इस घर में रहेगी। मैं लौंडी नहीं हूं, जो घर से बाहर जाकर रहूं।" 59

जालपा :

जालपा "गबन" उपन्यास की नायिका है। बाल्यावस्था से ही उसे "चन्द्रहार" का एक विशेष आकर्षण था। गाँव में किसी भी लड़की की शादी होती, चढ़ावे में चन्द्रहार आया है या नहीं, उसका वह हमेशा ध्यान रखती है। उसकी माँ के पास चन्द्रहार था। वह अपने लिए वैसा हार मंगवाने के लिए कहती है। तब माँ उसे कहती है —" तेरे लिए तेरी ससुराल से आएगा।" वह सोचती है कि यदि ससुराल से नहीं आया तो ? तब क्या उसकी माँ उसे अपना चन्द्रहार न देगी ? अवश्य देगी।" 60

जालपा का विवाह दयानाथ के पुत्र रमानाथ से होता है। चढ़ावे में और गहने तो आते हैं पर चन्द्रहार ही नहीं आता है। इससे जालपा बहुत निराश हो जाती है और दुःखी रहने लगती है। रमानाथ के विवाह में दयानाथ हैसियत से ज्यादा खर्च कर डालते हैं। फलतः उन पर काफी कर्ज़ चढ़ जाता है। लेनदारों के तकाजे जब बढ़ जाते हैं, तब बाप-बेटे मिलकर जालपा के गहने उठवा लेते हैं। गहनों की चोरी की खबर से जालपा और भी विक्षुब्ध हो जाती है। इधर रमानाथ को म्युनिसिपैलिटी की चुंगी में नौकरी मिलती है। वह शर्राफ से उधार पर जालपा के लिए कुछ गहने बनवाता है और सोचता है कि शर्राफ का कर्ज़ तनख्वाह में से धीरे-धीरे करके उतार देगा। जालपा के लिए जो गहने आते हैं उनमें एक हार बहुत ही अच्छा था। रमानाथ जालपा के आगे हमेशा लम्बी-चौड़ी हाँकता रहता है और अपनी असली स्थिति को छिपा ले जाता है, फलतः उसे खर्च भी ज्यादा करना पड़ता है। इन सबके कारण शर्राफ के हप्तों में नियमित नहीं रह पाता है। जालपा की सहेली रतन एक एडवोकेट की पत्नी है। उसे जालपा का हार बहुत पसंद आता है और वैसा ही हार उसके लिए बनवाने के लिए वह जालपा को पैसे देती है। रमानाथ वे पैसे शर्राफ को दे देता है। उसका ख्याल था कि वह पहले वाले पैसे शर्राफ को चुका देगा और रतन के लिए हार फिर उधार पर बनवा लेगा। पर ऐसा नहीं होता। शर्राफ पैसे तो जमा कर लेता है, पर आगे उधार के

फिर मना कर देता है । उधर रतन के तगादे बढ़ जाते हैं । अतः रमानाथ सोचता है कि अगर वे रतन को एक बार पैसा दिखा देंगे , तो वह पुनः हार के लिए पैसे दे देगी । अतः एक दिन वह आफिस से पैसे जमा कराने के बदले घर ले आता है । वह जालपा को यह बताता नहीं है । फलतः जब रतन आती है तो जालपा गुस्से में आकर वे पैसे रतन को दे देती है । रमानाथ में अपनी पत्नी को वास्तविक बात कहने की हिम्मत नहीं है । अतः वह जालपा के नाम एक चिट्ठी लिखकर घबड़ाकर कलकत्तावाली ट्रेन में बैठ जाता है । रमानाथ की चिट्ठी से जालपा को वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान होता है और यहीं से जालपा के चरित्र में एक विशिष्ट मोड़ हमें मिलता है ।

यहाँ से जालपा के संघर्षमय जीवन का प्रारंभ होता है । उसे रमानाथ पर क्रोध आता है कि उन्होंने झूठा दिखावा क्यों किया । क्या उनको उस पर विश्वास नहीं था । वह कहती है कि " मैं उन स्त्रियों में नहीं हूं , जो गहनों पर जान देती हैं । "[61] और वह अपने सारे गहने बेचकर चुंगी में पैसे जमा करवा देती है । किसीको पता तक नहीं चलता है कि गबन जैसा कुछ हुआ है । रमानाथ को ट्रेन में देवीदीन खटिक मिल जाते हैं और वह उनके साथ कलकत्ता चला जाता है । जालपा तो पैसे चुका देती है , पर रमानाथ तो यही समझता है कि उसने सरकारी तिजोरी से पैसा गबन किया है और उधर पुलिस उसकी खोज में लगी होगी और उसके नाम पर थू-थू हो रही होगी । पता नहीं जालपा भी उसके बारे में क्या-क्या सोच रही होगी ।

किन्तु जालपा इस विपत्ति और चुनौती का सामना करती है । वह दिखा देना चाहती है कि आभूषण-प्रियता ही सत्य नहीं । सत्य है उसका पति-प्रेम और त्याग । रमानाथ के भाग जाने पर वह स्वयं को असहाय और अबला नहीं समझती , किन्तु धैर्य और साहस से परिस्थितियों का डटकर मुकाबला

करती है और रमानाथ को ढूंढने का हर संभव प्रयास करती है । वह अखबार में एक ऐसी कसौटी देती है और उस पर इनाम घोषित करती है । उसे पता था कि रमानाथ उस कसौटी का हल जानते हैं । अतः यदि अखबार उनके हाथों पड़ा तो जरूर वे उसका हल लिख भेजेंगे और इस तरह उनका पता मिल जायेगा । और ऐसा ही होता है । इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि जालपा बुद्धिमान और चतुर भी है । प्रतिकूल परिस्थितियों में भी वह अपना संतुलन खोती नहीं है । बल्कि उसका चरित्र विपरीत परिस्थितियों में ही कंचन की तरह निखरकर आता है ।

इधर रमानाथ हमेशा पुलिस से डरता रहता है । ऐसे में एक बार पुलिस को उस पर शक हो जाता है । वह गबनवाली बात पुलिस को बता देता है । इस पर पुलिस तहकीकात करती है और उसे मालूम हो जाता है कि रमानाथ पर गबन का कोई मुकदमा नहीं है । परन्तु पुलिस रमानाथ की अज्ञानता का फायदा उठाते हुए क्रान्तिकारियों के खिलाफ चल रहे एक मुकदमें मुकदमे में उसे सरकारी गवाह बनाकर उसे गबन के केस से मुक्त करा देने का लालच देती है । रमानाथ कमजोर दिल आदमी तो है ही । वह पुलिस के झांसे में आ जाता है और उसकी गवाही से कई निर्दोष लोगों को सजा होती है । एक क्रांतिकारी को तो फांसी की सज़ा भी सुनाई जाती है । इससे कलकत्ता का लोकमत रमानाथ पर धिक्कार बरसाता है । देवीदीन खटिक और उनकी बुढ़िया पत्नी भी रमानाथ से नफ़रत करने लगते हैं । जालपा रमानाथ को ढूंढते हुए जब कलकत्ते पहुंचती है तो उसे भी यह सब ज्ञात होता है । यहां जालपा के चरित्र के और पहलू हमारे सामने आते हैं । उसमें पति-भक्ति है । किन्तु उसकी पति-भक्ति अंध नहीं है । जब वह देखती है कि उसके पति की गवाही से कई निर्दोष लोगों को सजाएं हुई हैं तो उसे रमानाथ से वितृष्णा हो जाती है । वह उसे नफ़रत करने लगती है । उसमें राष्ट्रीयता की भावना जगती है । निरपराध दिनेश की फांसी की सज़ा से उसे बेहद दुःख होता है और

वह उसके परिवार की सेवा और सहायता के लिए चल पड़ती है। जालपा के ही प्रयत्नों से रमानाथ को अपने पाप-कर्म का अहसास होता है और वह मैजिस्ट्रेट के समक्ष अपना बयान बदल देता है। उपन्यास के अन्त में हम जालपा, रमानाथ आदि पात्रों को गांव में खेतीबाड़ी और सेवा का कार्य करते हुए पाते हैं।

प्रारंभ में एक आभूषण-प्रिय सामान्य भारतीय नारी के रूप में जालपा का चित्रण हुआ है, किन्तु बाद में वही जालपा त्यागमयी, कर्तव्यपरायण, दयालु, सत्यनिष्ठ, न्यायप्रिय और सेवापरायण नारी के रूप में दृष्टिगत होती है। वस्तुतः प्रेमचन्द नारी की कोमलता और श्रृंगारप्रियता के विरोधी नहीं थे, किन्तु वे यह चाहते थे कि नारियां पुरुषों पर इतनी निर्भर न रहें कि उनका अस्तित्व ही मिट जाए। जालपा रमा के जाने पर बड़े संयम और साहस से काम लेती है। प्रेमचन्द चाहते थे कि नारी जीवन के हर क्षेत्र में पुरुष से कन्धा से कन्धा मिलाकर काम करें। प्रेमचन्द नारी-हृदय की उन शाश्वत भावनाओं को उकेरते हैं जिनकी युग-युगों से उपेक्षा होती रही है। इसलिए प्रेमचन्द के नारी-पात्र प्रायः पारिवारिक और सामाजिक संघर्षों के बीच ही अधिक निखरकर आते हैं। डा. बच्चनसिंह के शब्दों में " गबन में जालपा के चरित्र का विकास उस समय से होता है जब वह रमानाथ को खोजने के लिए घर से बाहर आकर संघर्ष करती है।" 62 यहां जालपा एक भारतीय नारी है, भारतीय पत्नी है, जिसका प्रेम स्वार्थ पर नहीं, अपितु त्याग और बलिदान और कष्ट उठाने पर आधारित है। ये कांटों में खिलनेवाले फूल हैं।

रतन :

"गबन" उपन्यास की रतन जालपा की सहेली और वकील साहब की पत्नी हैं। उसके मां-बाप काल-कवलित हो गए थे। मामा की छत्र-छाया में बड़ी हुई। मामा उसका ब्याह एक अधेड़ अवस्था के

वकील से कर देते हैं । वकील साहब हमेशा बीमार रहते थे , किन्तु रतन उनको पितातुल्य मानकर उनकी सेवा-सुश्रुषा करती थी । रतन का ब्याह भी अनमेल विवाह का एक उदाहरण है । वकील साहब उसे शारीरिक प्रेम तो दे नहीं सकते , अतः गहने-आभूषण देकर उसे प्रसन्न रखने की चेष्टा करते हैं क्योंकि उनके पासरतन को प्रसन्न रखने के लिए धन के अलावा और चीज ही क्या थी ? उन्हें अपने जीवन में एक आधार की जरूरत थी । सो रतन के रूप में उनको मिल गयी । रतन को आत्म-प्रदर्शन के सभी साधन उपलब्ध हैं — हंसी-विनोद, सैर-सपाटा , खाना-पीना , सिनेमा , देश-भ्रमण , ताश , संगीत और पालतू जानवर । वकील साहब पास सबकुछ था , यौवन रूपी धन के अतिरिक्त । किन्तु रतन को अपनी स्थिति से कोई असंतोष नहीं है । एक स्थान पर वह जालपा से कहती है —" मुझे तो कभी यह खयाल भी नहीं आया कि मैं युवती हूँ और वे बूढ़े हैं ।"[63] वकील साहब के प्रति उसे सहानुभूति ही नहीं , वरन् वह उन्हें देवता समझकर उनकी सेवा करना चाहती है । वकील साहब की बीमारी से रतन बहुत ही दुःखी रहती है । एक स्थान पर वह जालपा से कहती है —" जाड़ों में उनको दमे का दौरा हो जाता है । बेचारे जाड़ों भर एमलशन और सनाटोजन और न जाने कौन-कौन से रस खाते रहते हैं ; पर यह रोग गला नहीं छोड़ता । कलकत्ते में एक नामी वैद्य हैं । अब की उन्हीं से इलाज कराने का इरादा है । कल चली जाऊंगी । मुझे ले तो नहीं जाना चाहते हैं , कहते हैं , वहां बहुत कष्ट होगा ; लेकिन मेरा जी नहीं मानता । कोई बोलनेवाला तो होना चाहिए । वहां दो बार हो आयी हूं , और जब-जब गई हूं , बीमार हो गयी हूं । मुझे वहां जरा भी अच्छा नहीं लगता ; लेकिन अपने आराम को देखूं या उनकी बीमारी को देखूं । बहन , कभी-कभी ऐसा जी उब जाता है कि थोड़ी-सी संखिया खाकर सो रहूं । विधाता से इतना भी नहीं देखा जाता । अगर कोई , मेरा सर्वस्व लेकर भी इन्हें अच्छा कर दें , कि इस

बीमारी की जड़ टूट जावे , तो मैं खुशी से दे दूंगी ।" 64 लेकिन रतन के सारे प्रयत्न विफल जाते हैं और उसके पति की मृत्यु हो जाती है । उनके दिवंगत होने पर भी उसे यही क्षोभ रहता है कि वह उनकी पर्याप्त सेवा नहीं कर पायी । इस प्रकार रतन एक सेवा-मूर्ति है । कोई दूसरी स्त्री होती तो कितना कलह-कोलाहल करती , पति के बुढ़ापे को लेकर ताने-तिसने कसती , गलत रास्ते पर चली जाती , परन्तु रतन अपने पति की सेवा श्रद्धा-भावना से करती है । उसमें असंतोष या उलाहना नहीं है । पति के श्राद्ध के दिन वह अपने सारे कीमती वस्त्राभूषण दान कर देती है । पति की मृत्यु के बाद उसकी बड़ी दुर्दशा होती है । वकील साहब के भतीजे उसको उनकी संपत्ति से बेदखल कर देते हैं और एक ही महीने के भीतर वह रोटियों के लिए भी मोहताज हो जाती है । अंततः वह रमानाथ और जालपा के साथ गांव में रहती है और वहीं उसकी मृत्यु हो जाती है । रतन के चरित्र द्वारा प्रेमचंद यह दिखाना चाहते हैं कि "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता " की डींगें मारने वाले इस हिन्दू समाज में विधवाओं की स्थिति कितनी दयनीय होती थी । पति की संपत्ति में उसका अधिकार नहीं होता था । अब उसके लिए विधान बन गया है । परंतु वहां भी तरह-तरह के हथकंडों के द्वारा उसे हथियाने के प्रयास हो रहे हैं ।

<u>निर्मला :</u>

निर्मला " निर्मला" उपन्यास की नायिका है । इस उपन्यास के द्वारा प्रेमचंदजी ने दहेज-प्रथा की त्रासद स्थितियों को व्यंजित किया है । निर्मला के पिता बाबू उदयभानु पेशे से वकील हैं और समाज में उनकी इज्जत है । अतः निर्मला का विवाह एक संपन्न परिवार में तय हुआ था । किन्तु एक बदमाश-गुण्डे को उन्होंने सज़ा दिलाई थी , अतः सज़ा काटने पर एक दिन मौका पाकर वह उन पर वार कर देता है और उसमें वकील साहब की असमय मृत्यु हो जाती

है और निर्मला का संबंध टूट जाता है । कमानेवाला घर का आधार ही धराशायी हो गया । विधवा माँ दहेज की मोटी रकम नहीं दे सकती , अतः पन्द्रह साल की किशोरी का विवाह पैंतीस साल के मुंशी तोताराम से हो जाता है । निर्मला अपने पिता की उम्र के विधुर-पति के साथ उनकी पत्नी बनकर रहने के लिए विवश है । वह उन्हें प्रेम की वस्तु नहीं , सम्मान की वस्तु समझती थी ।[65] एक स्थान पर निर्मला कहती भी है — " अपना जीवन इनके चरणों पर अर्पित कर सकती हूं लेकिन वह नहीं कर सकती जो मेरे किये नहीं हो सकता । अवस्था का भेद मिटाना मेरे बस की बात नहीं ।"[66] इस प्रकार अपनी यौवन-सुलभ भावनाओं और आकांक्षाओं का गला घोंटते हुए निर्मला किसी तरह अपनी स्थिति से समझौता कर लेती है । मुंशी तोताराम का बड़ा बेटा निर्मला का हमउम्र है । निर्मला को उसकी सोहबत अच्छी लगती है । वह उसकी पढ़ाई में ध्यान देती है । परंतु वहां भी उसका दुर्भाग्य उसका पीछा नहीं छोड़ता । अधेड़ और दुहाजू होने के कारण मुंशी तोताराम निर्मला और मंसाराम के संबंधों को स्वस्थ दृष्टि से नहीं देख पाता । मंसाराम पर जब यह बात खुलती है , तो वह इस आघात को और अपनी मां पर लगे लांछन को बर्दाश्त नहीं कर सकता और उसी गम में दम तोड़ देता है । मंझले बेटे जियाराम के मन में यह गांठ बंध जाती है कि उसके भाई के साथ अन्याय हुआ है और उसकी मौत के जिम्मेदार उसके पिता और सौतेली मां निर्मला है । अतः वह आवारा हो जाता है और निर्मला के आभूषणों की चोरी करता है और भेद खुल जाने पर आत्महत्या कर लेता है । घर में उत्पन्न हो रही त्रासद स्थितियों के कारण निर्मला का स्वभाव भी कर्कशा-सा हो जाता है । इस बीच निर्मला एक बच्ची को जन्म देती है । बच्ची के जन्म के बाद निर्मला बहुत ही कृपण हो जाती है और रुपये-पैसे के मामले में सबसे छोटे बेटे सियाराम के साथ रात-दिन की खिच-पिच चलती रहती है ,

और इसके कारण एक दिन वह भी साधुओं की जमात के साथ भाग जाता है। तोताराम भी अब निर्मला से चिढ़ने लगता है और इनका दाम्पत्य-जीवन क्लेशमय हो जाता है। एक दिन वह भी अपने खोये बैठे सियाराम को ढूंढने निकल पड़ता है और तब लौटता है जब निर्मला के प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं।

निर्मला विवाहपूर्व सुंदर, गंभीर, भावुक और मधुरभाषिणी थी, किन्तु विवाह के उपरांत जो स्थितियां आकार लेती हैं उसमें वह कर्कशा स्वभाव की हो जाती है। वस्त्राभूषणों से सज्ज होकर जब वह दर्पण के सामने खड़ी होती थी तो कई बार उसे मन होता था कि घर में आग लगा दे। लेकिन निर्मला कर्तव्य के यज्ञ में अपने स्वत्व का होम करती रही। पति तोताराम के प्रेम-प्रदर्शन से उसे घृणा है, तथापि उनकी सेवा करना वह अपना धर्म समझती है। मन मारकर भी तोताराम की गृहस्थी चलाती है। विमाता होते हुए भी तोताराम के बच्चों के भविष्य की चिन्ता उसे रहती है और उन्हें माँ का प्यार देने की चेष्टा भी वह करती है। निर्मला का उसके समवयस्क मंसाराम के प्रति आकर्षण उसकी चारित्रिक दुर्बलता नहीं, बल्कि स्वाभाविकता है। मंसाराम के प्रति वह उदार है। उसमें किसी प्रकार की वासना या कलुषिता नहीं है। मंसाराम के हृदय में भी कोई पाप नहीं था। अतः निर्मला पर जब उसका पति आक्षेप लगाता है, तो उसे हार्दिक वेदना होती है। वस्तुतः निर्मला का चरित्र चट्टान की मानिंद दृढ़ है। निर्मला पर लगे आक्षेप के संदर्भ में मंसाराम कहता है —" ईश्वर से मेरी प्रार्थना है कि मेरा पुनर्जन्म आपके गर्भ से हो, जिससे मैं आपके ऋण से उऋण हो सकूं। ईश्वर जानता है मैंने आपको विमाता नहीं समझा। मैं आपको अपनी माता ही समझता रहा। आपकी उम्र मुझसे बहुत ज्यादा न हो, लेकिन आप मेरी माता के स्थान पर थीं, और मैंने आपको सदैव उसी दृष्टि से देखा।" 67 मंसाराम मृत्यु शैया पर पड़ा हुआ जब उसे "माँ" शब्दों से संबोधित करता है तो उसके निष्कलंक प्रेम को एक गरिमा मिल जाती है।

यह निर्दिष्ट किया जा चुका है कि मंसाराम की अकाल मृत्यु के बाद , जियाराम गहनों की चोरी के भेद के खुल जाने पर आत्महत्या कर लेता है , सियाराम गृह-क्लेश से तंग आकर साधु हो जाता है । तोताराम भी पुत्र को ढूंढने निकल पड़ते हैं । निर्मला कृष्णा नामक एक बच्ची को जन्म देती है । इस प्रकार निर्मला को हम सदैव संघर्षमय स्थितियों में पाते हैं । जीवन में कहीं शांति और आनंद नहीं मिल पाया । वह सारी वेदना हृदय में दबाए रही , किन्तु अंतिम समय में अपनी ननद रुक्मिणी से अपनी बच्ची के संदर्भ में वह जो कहती है उसमें उसकी सारी विवशता , वेदना और करुणता मार्मिकता के साथ उभर आयी है । यथा —

" बच्ची को आपकी गोद में छोड़ जाती हूँ । अगर जीती-जागती रहे तो किसी अच्छे कुल में विवाह कर दीजिएगा । ... चाहे क्वांरी रखिएगा , चाहे विष देकर मार डालिएगा , पर कुपात्र के गले न मढ़ियेगा , इतनी ही आपसे मेरी विनय है ।" [68] इस प्रकार निर्मला नारी-जीवन की एक महान त्रासदी है । "आँचल में है दूध और आँखों में पानी" वाली गुप्तजी की नारी यहाँ अपना मूर्तिमंत स्वरूप धारण करके अवतरित हुई है ।

रुक्मिणी :

"निर्मला" उपन्यास के नायक मुंशी तोताराम की विधवा बहन रुक्मिणी है । छोटी उम्र में ही वह विधवा हो गई थी । तोताराम की पत्नी का भी देहान्त हो गया था । अतः वह भाई के तीन बच्चों का खूब ध्यान रखती है । परन्तु तोताराम ने जब दूसरा विवाह किया तो उसके स्वभाव में काफी परिवर्तन आ गया । वह निर्मला पर रौब जमाती , भाई के कान भरती और निर्मला को रात-दिन ताने-तिशने मारती रहती थी । वह हमेशा निर्मला की चुगली करती रहती थी और उसकी छोटी-छोटी बातों का भी बतंगड़ बनाती रहती थी । निर्मला भी किशोरी थी । कोई बड़ी समझदार-परिपक्व औरत तो थी नहीं । अतः रात-दिन वह इसे कोसती रहती थी । तोताराम

और उसके बच्चों की सेवा में उसने अपनी ज़िन्दगी काट दी थी, लिहाजा उसका घर में खूब मान-सम्मान था और वह किसीसे दबती नहीं थी । निर्मला के आने पर तोताराम की बात जब उसे नागवार गुजरती है , तब वह स्पष्ट शब्दों में सुना देती है —

" तो क्या लौंडी बनाकर रखोगे ? लौंडी बनकर रहना है , तो इस घर की लौंडी न बनूंगी । अगर तुम्हारी यही इच्छा हो कि घर में कोई आग लगा दे और मैं खड़ी देखा करूं , तो यह मुझ से न होगा ।" [69] इससे स्पष्ट होता है कि निर्मला के आये बाद घर में प्रायः तनाव रहता है । वह ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं है । अतः निर्मला पर रात-दिन वाक्यबाणों की वर्षा करती रहती है । यथा — " जानती तो थी कि यहां बच्चों का पालन-पोषण करना पड़ेगा , तो क्यों घरवालों से नहीं कह दिया कि यहां मेरा विवाह न करो — यह बुड्ढा आदमी तुम्हारे रूप-रंग , हाव-भाव पर क्या लट्टू होगा ? उसने इन्हीं बालकों की सेवा करने के लिए तुमसे विवाह किया है , भोग-विलास के लिए नहीं ।" [70] इस प्रकार रुक्मिणी का यह जो स्वभाव हो गया है , उसके मनोवैज्ञानिक कारण हैं । पहले मुंशी तोता-राम के परिवार पर उसका एकछत्र राज था , निर्मला के आ जाने से उसे उसके छिन जाने का भय बना रहता है । दूसरे विधवा होने के कारण उसने सांसारिक सुख को भोगा नहीं है । अतः निर्मला यह सुख भोगे उसे यह कैसे अच्छा लग सकता है । जिसने सुख भोगा हो वही सुख बांट भी सकता है ।

किन्तु यही कठोर हृदया रुक्मिणी उपन्यास के अन्त में पुनः कुछ बदल-सी जाती है । निर्मला के प्रति उसके हृदय में अब दया , स्नेह, सहानुभूति और करुणा के भाव जाग ~~xxxx~~ उठते हैं । यथा —" बहू , तुम इतनी निराश क्यों होती हो ? भगवान चाहेंगे तो तुम दो या चार दिन में अच्छी हो जाओगी । मेरे साथ आज वैद्यजी के पास

चलो , बड़े सज्जन हैं ।" पृ०[71]

वह निर्मला के पास घण्टों बैठकर उसे कथा-पुराण सुनाती रहती है । उसकी बच्ची को हमेशा अपने सीने से लगाकर रखती है , यहां तक कि निर्मला की सेवा में अपना सारा दिन बिता देती है । अब रुक्मिणी के हृदय में ईर्ष्या-द्वेष के भाव नहीं है , पर क्षमा-प्रार्थना के भाव हैं — " बहू , तुम्हारा कोई अपराध नहीं । ईश्वर से कहती हूं , तुम्हारी ओर से मेरे मन में जरा भी मैल नहीं है । हां मैंने सदैव तुम्हारे साथ कपट किया । इसका मुझे मरते दम तक दुःख रहेगा ।"[72] इस प्रकार हम देख सकते हैं कि मुंशी प्रेमचन्दजी ने रुक्मिणी का जो चित्रण किया है वह मानव-स्वभाव के बिलकुल अनुरूप है । रुक्मिणी विधवा है , दुःखी है , पहले वह निर्मला को अपने से बेहतर स्थिति में पाती थी , अतः उससे ईर्ष्या-द्वेष रखती है ; परन्तु बाद में जब निर्मला की स्थिति खराब हो जाती है , तब वह उससे सहानुभूति जताने लगती है ।

<u>सुधा :</u>

"निर्मला" उपन्यास की सुधा एक आदर्श भारतीय नारी है । इसके पति डा. भुवनमोहन सिन्हा है । इन्हीं भुवनमोहन से पहले निर्मला का संबंध तय हुआ था , किन्तु बाद में दहेज के कारण उन्होंने मना कर दिया था । संयोगवश निर्मला और सुधा में बहनापा हो जाता है । तब उस सुधा इस तथ्य से ज्ञात होती है कि उसके पति धन-लोलुप हैं और उसके कारण ही निर्मला की दुर्दशा हुई है । तब वह अपने पति को भी फटकार सुनाती है —" जो कांटा बोया है , उसका फल खाते क्यों इतना डरते हो ? जिसकी गर्दन पर कटार चलायी है , जरा उसे तड़पते भी तो देखो । मेरे दादाजी ने पांच हजार दिये न , अभी छोटे भाई के विवाह में पांच-छः हजार और मिल जायेंगे । फिर तो तुम्हारे बराबर धनी संसार में कोई दूसरा न होगा ।"[73]

सुधा निर्मला को सच्चे दिल से चाहती है और उसके प्रति सहानुभूति भी रखती है । निर्मला के इस साथ जो अन्याय हुआ ,

उसका पश्चाताप करने के लिए वह अपने पति को प्रेरित करती है और इसी उपक्रम में निर्मला की बहन कृष्णा का विवाह अपने देवर से बिना दहेज के करवाती है । वह पांच सौ रुपये की सहायता भी निर्मला की माँ कल्याणी को करती है । निर्मला सुंदर तो है ही । जब से निर्मला कर सुधा के पति भुवनमोहन जब निर्मला पर डोरे डालते हैं , तब सुधा अपने पति को बुरी तरह से फटकारती है , जिसके कारण वह मारे लज्जा के आत्महत्या कर लेते हैं । सुधा अपने पति को चाहती है , पर उसके लिए सर्वोपरि है नारी का स्वाभिमान । वह कर्तव्यनिष्ठ, व्यवहार-कुशल और अत्यंत सुलझे हुए विचारों वाली एक सुशिक्षित महिला है ।

पूर्णा : "प्रतिज्ञा" उपन्यास का यह एक विधवा नारी-पात्र है । वह एक सीधी-सादी सरल स्वभाव की स्त्री है । पूर्णा प्रेमा की सखी है और उसके पड़ोस में रहती है । प्रेमा के पिता बद्रीप्रसाद एक दयालु प्रकृति के व्यक्ति हैं और पूर्णा की असहाय अवस्था से द्रवित होकर वे उसकी सहायता करते हैं । उनके पुत्र कमलाप्रसाद को पहले तो यह अच्छा नहीं लगता , किन्तु वह एक लंपट व्यक्ति है । अतः पूर्णा को अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों में फंसाने की चेष्टा करता है । अपने बदइरादों के लिए वह बीच में ईश्वरेच्छा की बातों को ले आता है —" पूर्णा , एक पत्ता भी उसके हुक्म के बिना हिल नहीं सकता । तुम्हिया मुझसे नाराज है तो यह ईश्वर की इच्छा है । तुम मुझ पर मेहरबान हो तो यह भी ईश्वर की इच्छा है । क्या हमारा-तुम्हारा मेल ईश्वर की इच्छा के बिना हो सकता था ।" [74] अपनी ऐसी बातों में वह पूर्णा को फंसाता है और उस पर बलात्कार करने का असफल प्रयत्न करता है । वह कुर्सी उठाकर उसे दे मारती है और वहाँ से भाग जाती है । उसके बाद वह अमृतराय के विधवाश्रम में जाकर रहने लगती है और सोचती है —" अपने पति के बाद ही उसने क्यों न अपने प्राणों का त्याग किया ? क्यों न उसी शव के साथ सती हो

गई ? इस जीवन से तो सती हो जाना कहीं अच्छा था ।"[75] अमृतराय उसे बदनामी से बचाने के लिए उस वनिताश्रम की संचालिका बना देते हैं । पूर्णा से विवाह कर अमृतराय एक आदर्श स्थापित कर सकते थे, किन्तु उनकी चेतना में तो प्रेमा छायी हुई है, अतः वे ऐसा नहीं कर सके । पूर्णा आश्रम के बाग में थोड़ी-सी जमीन साफ करके एक घरौंदा-सा बनाती है और उसमें कृष्ण की मूर्ति स्थापित करती है । इस प्रकार पूर्णा अपनी भावनाओं-कामनाओं को उदात्तता की ओर ले जाने का प्रयत्न करती है ।

प्रेमा :

एक तरह से हम "प्रेमा" को "प्रतिज्ञा" उपन्यास की नायिका कह सकते हैं । वह बद्रीप्रसाद की पुत्री है । उनकी बड़ी लड़की का विवाह उपन्यास के नायक अमृतराय से हुआ था, परन्तु उसका देहान्त हो जाता है । अमृतराय अपनी साली प्रेमा को प्रेम करने लगते हैं । ससुर बद्रीप्रसाद भी चाहते हैं कि प्रेमा का विवाह अमृतराय से हो जाए । दूसरी तरफ प्रोफेसर दाननाथ जो अमृतराय के मित्र हैं, वे भी प्रेमा को चाहते हैं । किन्तु प्रेमा का विवाह अमृतराय से तय हो जाता है । प्रो. दाननाथ इसे चुपचाप बर्दाश्त कर लेते हैं । किन्तु अमृतराय विधवा-विवाह पर का भाषण सुनकर अपना इरादा बदल देते हैं और अपना शेष जीवन विधवाओं की सेवा में अर्पित कर देना चाहते हैं । प्रेमा के पिता को अमृतराय की प्रतिज्ञा से दुःख होता है और वे उसका विवाह प्रो. दाननाथ के साथ कर देते हैं । दाननाथ चूंकि पहले से ही प्रेमा को चाहते थे, विवाह तो कर लेते हैं, परन्तु बाद में उनके मन में प्रेमा के संदर्भ में शंका-कुशंका के बादल मंडराने लगते हैं कि वह अब भी शायद अमृतराय को ही चाहती है । अतः वह कई बार जान-बूझकर उसके सम्मुख अमृतराय की बुराई करते हैं जिसे वह सह नहीं पाती । फलतः पति-पत्नी में प्रायः अनबन-सी रहती है । प्रेमा का चेतन मन भले ही दाननाथ को पति-रूप में आदर देता हो, किन्तु उसके अचेतन मन में तो अमृतराय की मूर्ति ही बैठी हुई है ।

सुमित्रा :

"प्रतिज्ञा" उपन्यास की सुमित्रा लाला बद्रीप्रसाद के लोभी और लंपट पुत्र कमलाप्रसाद की पत्नी है। प्रारंभ के कुछ दिन अच्छी तरह से व्यतीत हुए, परंतु जैसे-जैसे सुमित्रा अपने पति के दुर्गुणों को जानती गयी उसके मन में उसके वितृष्णा के भाव भरते गये। दोनों की प्रकृति में आसमान-जमीन का अंतर है। जहाँ सुमित्रा उदार है, वहाँ कमलाप्रसाद निष्ठुर है। सुमित्रा बहुत सुंदर न सही, रूपहीन भी नहीं थी। अपने पति को प्रसन्न करने के लिए वह बनाव-श्रृंगार भी करती है परंतु कमलाप्रसाद की रूचि तो दूसरी स्त्रियों में रहती थी। वह पूर्णा को अपनी वासना का शिकार बनाना चाहता था और उस पर बलात्कार की कोशिश भी करता है। एक स्थान पर वह सुमित्रा की निंदा करते हुए कहता है —" इस स्त्री के कारण मेरी जिन्दगी खराब हो गई। मुझे मालूम ही नहीं हुआ कि प्रेम किसे कहते हैं। मैं संसार का सबसे अभागा प्राणी हूं और क्या कहूं। पूर्व जन्म के पापों का प्रायश्चित कर रहा हूं।" 76 पति के ऐसे भावों और विचारों के कारण सुमित्रा में विद्रोह के भाव प्रबल होने लगते हैं। जब उसका पति रात-रात भर घर से बाहर रहता है तो उसे बहुत दुःख होता है और ऐसे में उसके विद्रोहात्मक भाव और भी बढ़ जाते हैं। कई बार तो वह सोचती है कि वस्तुतः लड़कीवालों को दहेज लेना चाहिए। वह कई बार यह भी सोचती है कि भारतीय लड़कियों को भी ~~xxx~~ पाश्चात्य युवतियों की तरह अविवाहित जीवन व्यतीत करना चाहिए ~~xxxx~~ ताकि पति-प्रताड़ना से वह बच सकें। सुमित्रा स्त्रियों के आर्थिक परावलंबन को भी उनकी परतंत्रता और परवशता का कारण मानती है। इस प्रकार के विद्रोही भावों के रहते हुए भी वह पति-गृह को छोड़ने को उद्यत नहीं है, क्योंकि उसके भीतर कहीं भारतीय संस्कार और आदर्श मौजूद हैं। इस प्रकार कमलाप्रसाद और सुमित्रा का युग्म चरित्र-वैषम्य का उदाहरण है। "प्रेमाश्रम" के ज्ञानशंकर-विद्यावती और "गोदान"

चन्द्रप्रकाश खन्ना और गोविन्दी भी इसी प्रकार के युग्म हैं ।

डा. हंसराज रहबर सुमित्रा के संदर्भ में लिखते हैं —" ऐसी ही एक जीती-जागती और सप्राण नारी "प्रतिज्ञा" की सुमित्रा है । वह अपने पति कमलाचरण से बिलकुल ही विपरीत स्वभाव की है । उसका पति कंजूस , दुष्ट और दुराचारी है ; लेकिन सुमित्रा उदार, सुशील और सती-साध्वी है । माता-पिता ने कमलाचरण से विवाह कर दिया इसलिए उसके साथ निर्वाह कर रही है । पर वह उसके आचरण की कड़ी आलोचना और निन्दा करती है । वह निर्भीक है । वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के प्रति उसके मन में क्षोभ और क्रोध भरा हुआ है ।" [77]जब कमलाचरण पूर्णा के हाथों जख्मी होता है और कोई शंका प्रकट करता है कि कहीं वह मर न जाए , तो सुमित्रा कहती है —" ऐसे निर्लज्ज मरा नहीं करते । मरते हैं वह, जिनमें सत्य की शक्ति होती है ।" [78] एक अवसर पर जहां पुरुषों द्वारा स्त्रियों की रक्षा पर कोई बात चल रही थी , सुमित्रा तत्काल बोल पड़ती है —" रक्षा की है तो इसलिए नहीं कि औरतों के बारे में मर्दों के विचार उदार हैं । अपनी संपत्ति के लिए संतान की आवश्यकता न होती तो कोई भी मर्द स्त्री की बात न पूछता ।" [79] इस प्रकार हम देखते हैं कि सुमित्रा एक बुद्धि-संपन्न , भावुक , साहसी और त्यागी नारी-चरित्र है ।

<u>सुखदा :</u>

सुखदा "कर्मभूमि" उपन्यास की नायिका है । उसका विवाह उपन्यास के नायक अमरकान्त से हुआ है । प्रारंभ में सुखदा एक सामान्य प्रकार की स्त्री लगती है जो सुख-चैन और भोग-विलास की जिन्दगी चाहती है । वह नहीं चाहती कि उसका पति आराम के जीवन को तिलांजलि देकर मेहनत-मजदूरी का काम करे । मेहनत को परिश्रम का जीवन नहीं , अपितु दूसरों की चाकरी समझती है ।

वह दूसरों के अनुकूल नहीं , उन्हें अपने अनुकूल बनाना चाहती है । चाहती है कि दूसरे उसकी विचार-दिशा में अग्रसर हों । किन्तु अमरकान्त में देशसेवा और गरीबों की सेवा के भाव कूट-कूट कर भरे हैं । "कर्मभूमि" महात्मा गांधी के स्वाधीनता-संग्राम के दौर का उपन्यास है । अतः अमरकान्त शहर को छोड़कर गांव चला जाता है । यहां से सुखदा के जीवन में एक बदलाव आता है । वह समझने लगती है कि अब तक जीवन के यथार्थ से दूर थी । वह अनुभव करती है कि समाज में निर्धनता का हाहाकार , वासनाओं की विमुक्त क्रीड़ा एवं उत्पीड़न का कटु यथार्थ भी है । तब वह अपनी कर्तव्य-भावना को एक व्यापक आलोक में रखकर परखती है और तब वह महसूस करती है कि दम्पत्ति का माता-पिता , समाज तथा देश के प्रति भी कोई धर्म होता है । देश जब गुलामी के दौर से गुजर रहा हो तब तो सुखी दंपत्तियों का यह धर्म हो जाता है कि वे अपने गरीब बांधवों की सेवा में तत्परता दिखावें । विपरीत विचारों के कारण अमरकान्त पत्नी सुखदा से दूर-दूर होता जाता है और ऐसे में एक मुस्लिम युवती सकीना की ओर वह आकर्षित होता है और उसे प्रेम करने लगता है । सकीना भी उसे प्रेम करने लगती है । सुखदा के नारी-सहज स्वाभिमान को उससे चोट तो पहुंचती है किन्तु सकीना को मिलने पर सुखदा महसूस करती है —" इस छोकरी में वह सभी गुण हैं जो पुरुषों को आकृष्ट करते हैं । ऐसी ही स्त्रियां पुरुषों के हृदय पर राज करती हैं । आज मुझे ज्ञात हुआ कि मुझमें क्या त्रुटियां हैं , इसने मेरी आँखें खोल दीं ।" 60 यह आत्म-ग्लानि और आत्म-परीक्षण ही उसके जीवन को नयी दिशा देते हैं । किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि उसके बाद सुखदा निरंतर दैन्य-भावना में घुल जाती है । पति से कोसों दूर रहते हुए भी वह मानिनी स्त्री सोचती है कि वह अपना हाथ बढ़ाकर बुलाये तो है ठीक अन्यथा वह अपनी जिन्दगी ऐसे ही गरीबों और देश की सेवा में गुजार देगी । वस्तुतः अब उसे जीने का एक मकसद मिल जाता है । यहां से सुखदा में एक

ईर्ष्याहीन व्यापक सहानुभूति का समावेश होता है । वह जानती है कि सकीना का उसके पति के साथ प्रेम-संबंध है , पर अमरकान्त उसे भी छोड़कर देशसेवा के निमित्त किसी अज्ञात स्थान पर चला गया है । अतः वह सकीना को भी अपनी ही तरह , बल्कि अपने से भी अधिक दुःखी समझती है । गोरों द्वारा मुन्नी के बलात्कृत होने पर वह उसे भी अपने यहाँ आश्रय देती है । इसीसे उसकी व्यापक सहानुभूति और सामाजिक सरोकारों का परिचय मिलता है । वह गाँधीयुग की नारी है । साधनों को उतना ही महत्त्वपूर्ण निर्णयात्मक समझती है जितना साध्य को । वह हिंसा की अपेक्षा बलिदान को अधिक महत्व देती है । उसमें यह आशावादिता भी विद्यमान है कि दमन से न्याय के लिए प्रतिकार और भी बलवान होता है , जिस प्रकार चोट खाने पर गेंद की गति में और भी उभार आता है । नैतिकता पर भी वह बल देती है । नशेबाजी तथा घूसखोरी को वह अत्यन्त हेय समझती है । ऐश्वर्य को त्यागकर वह स्वयं गरीबों का-सा जीवन व्यतीत कर रही है । त्याग द्वारा प्राप्त विजय में उसकी आस्था दृढ़मूल होती जा रही है । उसका यह विश्वास है कि त्याग के बिना व्यक्ति दूसरे को प्रभावित नहीं कर सकता । वह यह भी अनुभव करती है कि निर्धनों का उत्थान निर्धनों की-सी अनुभूति से ही किया जा सकता है । अपने वैयक्तिक जीवन में भी वह अब अधिक गंभीर और अध्ययनशील हो गई है । उपन्यासों की अपेक्षा इतिहास और दार्शनिक विषयों में उसकी रूचि बढ़ती है । फलतः उसके भाषण भी सारगर्भित होने लगते हैं । इस प्रकार सुखदा एक गतिशील चरित्र के रूप में हमारे सामने आती है ।

सकीना :

सकीना "कर्मभूमि" उपन्यास का एक दूसरा महत्त्वपूर्ण नारी-पात्र है । वह बुढ़िया पठानिन की पोती है । वह इतनी सुंदर नहीं है , परन्तु रंग-रूप , चाल-ढाल , शील-संकोच आदि से युक्त उसका

नारी-व्यक्तित्व कुछ आकर्षक-सा बन पड़ता है । कुनाई-कढ़ाई से बड़ी मुश्किल से वह अपना खर्च निकालती है । अचानक क्रांतिकारी हिन्दू युवक अमरकान्त से उसकी मुलाकात होती है तो दोनों परस्पर प्रेम करने लगते हैं । अमरकान्त सकीना द्वारा काढ़े गए कपड़ों को बेचने ले जाता है । सकीना के पास कपड़े न होने पर वह उसके लिए साड़ियाँ भी लाता है । अमरकान्त का धर्म-निरपेक्ष व्यवहार उस मुस्लिम युवती को प्रभावित करता है । जब अमरकान्त उसके सामने अपना प्रेम व्यक्त करता है तो वह भी धर्म के भेद को भुलकर उससे प्रेम-निवेदन करती है । यथा —

" मैं तो सिर्फ तुम्हारी पूजा करना चाहती हूँ । देवता मुंह से कुछ नहीं बोलता ; तो क्या पुजारी के दिल में उसकी भक्ति कुछ कम होती है ? मुहब्बत खुदा का इनाम है ... यह दिल हमेशा तुम्हारा रहेगा ।" ८१

सकीना के उपर्युक्त कथन से ही स्पष्ट होता है कि उसके मन में प्रेम के संदर्भ में हिन्दू-मुस्लिम जैसा कोई भेद नहीं है । वह निर्धन और अशिक्षित होते हुए भी धर्म-निरपेक्ष विचारों वाली युवती है । हिन्दू युवक अमर से उसे सच्चा प्रेम और सहानुभूति मिलती है तो वह उसे ठुकराती नहीं , बल्कि स्वयं आगे बढ़कर अपने प्रेम के पौधे को सींचती है । सकीना के इन्हीं विचारों से प्रभावित होकर ही अमर अपनी पत्नी सुखदा की अपेक्षा इस निर्धन , अनपढ़ युवती से अधिक प्रेम करता है । सुखदा और सकीना की तुलना करते हुए एक स्थान पर वह कहता है —" कितने प्यारे मीठे शब्द थे । कितने कोमल स्नेह से डूबे हुए ! सुखदा के मुंह से कभी यह शब्द निकले ? वह तो केवल शासन करना जानती है ।" ८२ सकीना के इसी प्रेम के कारण अमर मुसलमान बनने के लिए भी तैयार हो जाता है । सच्चा प्रेम हिन्दू-मुस्लिम नहीं देखता है । किन्तु बाद में अमर को लगता है कि उसका यह प्रेम उसके सेवामार्ग में बाधक हो सकता है ~~और सुखदा~~ तो वह सकीना को अपने मित्र

सलीम से विवाह करने के लिए कहता है , तो सकीना इस प्रस्ताव को भी स्वीकार कर लेती है । वह सर्का अमर और सुखदा के बीच से हट जाती है और अमर की बहन नैना के मरने के बाद वह अमर को अपना भाई मान लेती है और उसे आश्वस्त करती है कि ताज़िन्दगी वह रिश्ते को निभायेगी । सकीना में हम क्रमशः देखते हैं कि उसकी यह प्रेम-भावना धीरे-धीरे उदात्त स्वरूप धारण करने लगती है । वह अब अपने देश और देश की गरीब जनता को भी खूब प्रेम करती है । निर्धन जनता के साथ उसकी पूरी सहानुभूति है । जब हरिद्वार के पास अछूतों के गांव में किसानों के पक्ष में सरकार के विरुद्ध विद्रोह करने पर अमरकान्त , सलीम , मुन्नी , स्वामी आत्मानंद आदि सभी कर्मठ कार्यकर्ता पकड़े जाते हैं तो सकीना इस आंदोलन को चलाए रखती है और स्वयं भी गिरफ्तार होकर जेल में पहुंच जाती है । प्रेमचंद एक वस्तुनिष्ठ कथाकार हैं । उस समय गांधी के प्रभाव में अनेक स्त्रियाँ कारावास जाने में अपने जीवन को धन्य समझती थीं । सकीना भी उनमें एक है । इस तरह सुखदा के चरित्र की भाँति सकीना के चरित्र में भी हमें एक गतिशीलता के दर्शन होते हैं ।

पठानिन :

वह भी "कर्मभूमि" उपन्यास का एक नारी-पात्र है । उसके पति अमरकान्त के पिता लाला समरकान्त के यहाँ चपरासी का काम करते थे । वह बहुत ही ईमानदार व्यक्ति था । किन्तु जब उसका निधन हो जाता है तब भी लाला समरकान्त पठानिन को प्रति मास पाँच रुपये देते हैं । पठानिन के बहू और बेटी भी हैं , फिर भी वह अपनी पोती सकीना के साथ रहती है । वह गरीब और अनपढ़ है , तथापि धर्म और धार्मिक लोगों के संदर्भ में उसके विचार बहुत साफ और सच्चे हैं । जब उसकी पोती सकीना के विवाह के लिए अमर कहता है कि वह अपने एक-दो मुसलमान मित्रों से बात करेगा तो पठानिन कहती है — " शादी-ब्याह में अमीर-गरीब का ख्याल नहीं होना चाहिए , पर उनके हुक्म को कौन मानता

है । नाम के मुसलमान , नाम के हिन्दू रह गए हैं । न सच्चा मुसलमान नज़र आता है , न सच्चा हिन्दू ।" 83 पठानिन को हिन्दुस्तान तथा हिन्दुओं से बहुत ही प्रेम है । जब दो ~~गरेx~~ गोरों को मारने के एक जुर्म में मुन्नी नामक एक हिन्दू स्त्री को पकड़ा जाता है , तो पठानिन को उस हिन्दू स्त्री से पूरी सहानुभूति होती है । उसकी पैरवी के लिए एकत्रित चन्दे में वह भी दो रुपये देती है । जब अमरकान्त अपनी पत्नी सुखदा से विमुख होकर पठानिन की पोती सकीना से विवाह के लिए उद्यत होता है , तब सुखदा पठानिन से कहती है — " जब वह (अमरकान्त) मुसलमान होने को कहते हैं , तब तुम्हें क्यों इनकार है ? " उसके जवाब में पठानिन अपने कानों पर हाथ रखकर कहती है — " अरे बेटा , जिसका जिन्दगीभर नमक खाया , उसका घर उजाड़कर अपना घर बनाऊं ? यह शरीफों का काम नहीं है ।" 84 इस प्रकार पठानिन एक गरीब लेकिन ईमानदार और स्वाभिमानी औरत है ।

<u>मुन्नी :</u> "कर्मभूमि" उपन्यास का यह एक ग्रामीण नारी पात्र है । इसके परिवार में पति और एक बेटा है । वह सीधी लेकिन तेज-तर्रार औरत है । एक दिन अचानक दो गोरे व्यक्ति उसकी इज्जत लूट लेते हैं । तब मारे लज्जा के वह कहीं दूर चली जाती है कि उसकी परछाई भी किसी पर न पड़े । लेकिन यह महिला कोई सामान्य महिला नहीं है कि चुपचाप अपमान का घूंट पीकर बैठ जाय । मौका पाकर वह उन दो गोरों का खून कर देती है और इस प्रकार अपने प्रतिशोध को पूरा करती है । उसकी इज्जत जो जानी थी , वह तो चली गई , उसे कोई वापस नहीं लौटा सकता । वह न्यायालय में कहती है — " मैं तो भगवान से मनाती हूँ कि जितनी जल्दी हो सके मुझे संसार से उठा ले , जब आबरू लुट गई तो जीकर क्या करूंगी ?" 85 समाज उसे चाहे स्थान दे न दे , उसकी अपनी दृष्टि में उसके सतीत्व की

मृत्यु हो चुकी है । अतः वह जज साहब से कहती है — " मैं न्याय नहीं मांगती , दया नहीं मांगती , मैं केवल प्राण-दण्ड मांगती हूं ।" [86] शायद और बहनों की तरह मुझे विश्वास और सम्मान मिलेगा , " लेकिन मन की मिठाई से किसीका पेट आज तक भरा है ?" [87] अपनों का प्रेम और दूसरों का आदर न हो तो जीवन वृथा है , ऐसा वह मानती है । उसे लगता है कि अपने शायद प्रेम कर भी लें , लेकिन वह दया होगी , प्रेम शायद ही हो । इस प्रकार हम देख सकते हैं कि मुन्नी में सतीत्व और आत्मसम्मान का भाव कूट-कूट कर भरा है । अतः जब वह छूट जाती है उसके बादअमरकान्त द्वारा चलाए जा रहे आंदोलन में कूद पड़ती है और सुखदा , सकीना, पठानिन , रेणुकादेवी आदि के साथ जेल में चली जाती है ।

नैना :

"कर्मभूमि" उपन्यास का यह एक तेजस्वी पात्र है । वह लाला समरकान्त की पुत्री और अमरकान्त की बहन है । उसकी मां बचपन में ही गुजर गई थी , अतः उसे विमाता के संरक्षण में पलना पड़ता है । पहले उसे अपनी भाभी सुखदा के आचार-विचार पसंद नहीं थे , क्योंकि सुखदा ऐशो-आराम की ज़िन्दगी चाहती थी और वह अपने भाई के विचारों में रंगी हुई थी । किन्तु बाद में जब सुखदा भी देशसेवा का मार्ग अपना लेती है तब वह उसे चाहने लगती है । उसका विवाह सेठ धनीराम के पुत्र मनीराम से हुआ है । यह भी एक अनमेल विवाह है । नैना डा. शांतिकुमार से प्रेम करती है , किन्तु विवाह होता है मनीराम से । मनीराम शराबी-कबाबी और पक्का शोहदा है । नैना ने शादी के पहले दिन की बात अपनी भाभी से बतायी थी , उससे ही उसके चरित्र पर अच्छा-खासा प्रकाश पड़ता है —" जिस दिन मैं गई , उस दिन वे गले में हार डाले , आँखें नशे से लाल , उन्मत्त की भांति पहुँचे , जैसे कोई आसामी से महाजन के रुपये वसूल करने जाए ।

और मेरा घूँघट उठाते हुए बोले — " मैं तुम्हारा घूँघट देखने नहीं आया और न मुझे यह ढकोसला पसंद है , आकर इस कुर्सी पर बैठो । " उनका यह रूप देखकर थाल मेरे हाथ से छूटकर गिर पड़ा और उसका धूपदीप-नैवेद्य भूमि पर बिखर गया । मेरी चेतना का रोम-रोम जैसे इस अधिकार-गर्व से विद्रोह करने लगा ।" 88

उपर्युक्त कथन के अंतिम वाक्य से ज्ञापित होता है कि नैना एक स्वाभिमानी लड़की है । वह मनीराम के संदर्भ में कहती है — " जो स्त्री में केवल रूप देखना चाहता है , जो केवल हाव-भाव और दिखावे का गुलाम है , जिसके लिए स्त्री केवल स्वार्थ-सिद्धि का साधन है , उसे मैं अपना स्वामी नहीं स्वीकार कर सकती । ... जो विवाह को धर्म का बंधन नहीं समझता है , इसे केवल वासना की तृप्ति का साधन समझता है , वह पशु है ।" 89

पर नैना गांधीयुग की नारी है । अपने दाम्पत्य की जीवन की कमी की पूर्ति वह लोकसेवा से करती है । गरीब-चमारों की बस्ती को लेकर आंदोलन चलता है । इस सत्याग्रह आंदोलन में सुखदा , रेणुका , समरकान्त , अमरकान्त , सलोनी , पठानिन आदि सभी सत्याग्रही जब गिरफ्तार हो जाते हैं तब नैना सत्याग्रहियों की कमान संभालती है । उसका पति मनीराम उसे रोकने की चेष्टा करता है , परन्तु वह रुकती नहीं है और उसे शूट कर दिया जाता है । अंत में सरकार को झुकना पड़ता है । गरीबों को वह प्लोट दे दिया जाता है । वहीं पर इस देवी की एक प्रतिमा स्थापित होती है ।

सलोनी :

"कर्मभूमि" उपन्यास एक-से-एक तेजस्वी नारी-पात्रों से भरा हुआ है । सलोनी भी उनमें से एक है । वह अकेली चमारों की बस्ती में रहती है और उन सबमें चाची के नाम से जानी जाती

है । भूख , दरिद्रता और अभावों से उसकी कमर टूट गई है , किन्तु उसके हृदय की विशालता वैसी ही बनी हुई है । वह जीवन की समस्त अतृप्त इच्छाओं को लेकर आंदोलन में भाग लेती है , लेकिन गोलियों के सामने अपनी झुकी कमर को तानकर खड़ी हो जाती है । भोली-भाली ग्रामीण स्त्रियों की भाँति उसमें भी आतिथ्य-भावना है । वह अमरकान्त को गेहूँ की रोटी खिलाती है और स्वयं बाजरे की रोटी से ही संतोष कर लेती है । डा. हंसराज रहबर इन नारी-पात्रों के संबंध में लिखते हैं —

" उनकी (प्रेमचन्दजी की) मुन्नी और बुढ़िया सलोनी पर हजार अमरकान्त , शांतिकुमार और सुखदा कुर्बान की जा सकती है । उनका त्याग और मानव-प्रेम सीधा , सच्चा और स्वार्थ-रहित है । वे अपढ़ होते हुए भी गहरे अनुभव के कारण बहुत अच्छा जीवन-ज्ञान रखती है । वे यथार्थवादी और कर्मशील हैं ।" 90

धनिया :

धनिया "गोदान" उपन्यास की नायिका है । वह एक भारतीय ग्रामीण महिला है । वह एक अच्छी गृहिणी तथा ममतामयी माँ है । दुनिया की-सी व्यवहारकुशलता और छल-कपट उसमें नहीं है । बोलनेमें तेज-तर्रार है और किसीसे न दबना उसकी फितरत में है । उसका स्वभाव बदाम की भाँति है — ऊपर से कठोर किन्तु भीतर से कोमल । वह ~~अन्य~~ अन्याय को बर्दाश्त नहीं कर सकती । स्पष्टवादिनी होने के कारण ग्रामीण समाज भी उसे आदर की दृष्टि से नहीं देखता है । यहाँ तक कि उसके ऐसे स्वभाव के कारण उसका पति होरी भी उससे कई बार परेशान रहता है । किन्तु धनिया पर कोई असर नहीं होता । वह न तो किसीको खरी-खरी सुनाने में चूकती है और न किसीसे दबती है । होरी के प्रति प्रेम-भावना और ~~कर्म~~ पत्नी-धर्म में भी वह कहीं चूकती नहीं है । आखिर तक समाज के हर मोर्चे पर वह संघर्ष करती है । हारती और परा-

जित होती है , किन्तु टूटती नहीं है , झुकती नहीं है । वह एक जीवटवाली और जुझारू औरत है ।

धनिया विद्रोह की साकार प्रतिमा है । शिक्षित न होते हुए भी जीवन के शाश्वत मूल्यों का उसे ज्ञान है । ऊपर से कठोर दिखनेवाली धनिया ममता की साकार मूर्ति है । जब उसका बेटा गोबर झुनिया को घर के पास छोड़कर भाग जाता है और जब उसे मालूम होता है कि झुनिया गर्भवती है , तब वह उसे डाँटने-फटकारने के बदले मातृ-स्नेह से ढक लेती है । ऐसा प्रतीत होता है कि धनिया का चरित्र विरोधी प्रवृत्तियों का संगम है । वह खीझती है , झुंझलाती है , पर थोड़ी ही देर बाद मोम की तरह पिघलकर उदारता का परिचय भी देती है । उसके चरित्र का वर्णन प्रेमचंदजी इन शब्दों में करते हैं —" वह साध्वी जिसने होरी के सिवा किसी पुरुष को आँख भर देखा ही नहीं था , इस पापिष्ठा को गले लगाये उसके आँसू पोंछ रही थी , जैसे कोई चिड़िया अपने बच्चों को छिपाये बैठी हो ।" 1

धनिया के हृदय में अपने पति की भीरुता , समाज के झूठे रिवाजों , समाज के ठेकेदारों , शोषकों तथा स्वअकिंचनता के प्रति विद्रोह का भाव मिलता है । बेचारी रूखा-सूखा खाकर अपने जीवन का निर्वाह करती है । अपने पति पर क्रुद्ध होती है और अपनी दीन-हीन लाचार स्थिति को देखकर कुढ़ती-सी रहती है । फिर भी एक सद्गृहिणी की तरह सबकुछ स्वीकार कर लेती है । घर और समाज में अभाव , शोषण तथा झूठ को देखकर उसका विद्रोहिणी स्वरूप और भी तीव्र हो उठता है । वह अपने पति होरी की भाँति व्यवहार-कुशल बनने की इच्छुक नहीं । ऐसी व्यवहार-कुशलता किस काम की जिसमें दबना ही दबना हो , डरना ही डरना हो । अपने पति की जीर्ण-शीर्ण अवस्था से कई बार विचलित और उदासीन हो जाती है । उसे चिन्ता है कि निर्धनता और अभावों में जवानी

तो जैसे-तैसे कट जाएगी , लेकिन बुढ़ापा कैसे कटेगा ? असत्य और अन्याय से तो उसे बिलकुल चीढ़ है । इनसे वह कभी समझौता नहीं करती । होरी की झूठी गवाही पर वह सिर्फ घृणा ही नहीं करती , बल्कि थूकती भी है । वह गाय के हत्यारे को , चाहे वह उसका देवर ही क्यों न हो , छोड़ देने में पाप समझती है । सत्य और न्याय का बल उसे साहसी बना देता है , वह किसीसे डरना नहीं जानती । थानेदार तक को फटकारती है । यथा — " देख लिया तुम्हारा न्याय और तुम्हारी अक्ल की दौड़ । गरीबों का गला काटना दूसरी बात है , दूध का दूध और पानी का पानी करना दूसरी बात ।" 92

आर्थिक विवशता की स्थिति में धर्म और न्याय पर कायम रहनेवाली धनिया से भी एक भूल हो ही जाती है । अपना खेत बचाने के लिए वह रूपा के विवाह में अपने दामाद से दो सौ रुपये लेती है । किन्तु उसकी कुरेदन उसे चुपचाप नहीं बैठने देती । दामाद के पैसे चुकाने के लिए कठोर परिश्रम के लिए वह होरी को प्रेरित करती है । वह खुद होरी के साथ मजदूरी करती है और आधी-आधी रात तक बैठकर सुतली कातती है । लू लगने पर होरी की मृत्यु होने पर उसी सुतली के सवा रुपये से वह उसका "गोदान" करवा देती है । होरी की तरह "मरजादा" के लिए कर्ज लेने में वह नहीं मानती । यहां भी उसका वही विद्रोह झलकता है ।

धनिया के चरित्र की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि वह प्रशंसा से शीघ्र फूल जाती है और उसे प्रसन्न करके कोई भी काम निकालना बड़ा आसान है । अपने व्यवहार से वह होरी की कमियों को ढक देती है और जब होरी कल्पना की उड़ानें भरता है , तब यथार्थ बात कहकर वह उसे धरती पर खींच लाती है । इस प्रकार पति-पत्नी एक दूसरे के पूरक हैं । गरीबी है , अभाव है , लड़ाई-झगड़े भी हैं , पर पति-भक्ति और उसकी नियत में कोई खोट नहीं है ।

डा. हे हंसराज रहबर होरी और धनिया के संदर्भ में कहते हैं कि जिस तरह मर्द पात्रों में प्रेमचन्द का सबसे अधिक सुंदर और महान पात्र है, उसी प्रकार स्त्री-पात्रों में धनिया सबसे अधिक सुंदर और महान पात्र है। होरी अपने समाज के मूल्यों और मर्यादाओं का पालन करता है। रिवाज, परिवार और कानून सबको मानकर चलता है। वह पंचों को डांड और थानेदार को रिश्वत देता है। लेकिन धनिया अपने पति के इस दब्बूपन को पसंद नहीं करती। वह धर्म, समाज और सरकार सबकी विद्रोही है।[93] उपन्यास में प्रेमचन्द धनिया का चरित्रांकन करते हुए लिखते हैं — "धनिया का विचार था कि हमने जमींदार के खेत जोते हैं तो वह अपना लगान ही तो लेगा। हम उसकी खुशामद क्यों करें, उसके तलवे क्यों सहलावें? यद्यपि अपने विवाहित जीवन के बीस वर्षों में उसे अच्छी तरह अनुभव हो गया था कि चाहे कितनी ही कतर-ब्योंत करो, चाहे कितना ही पेट-तन काटो, चाहे एक-एक कौड़ी को दांतों से पकड़ो, मगर लगान बेबाक होना मुश्किल है। फिर भी वह हार न मानती थी और इस विषय पर स्त्री-पुरुष में आए-दिन संग्राम छिड़ा रहता था।"[94]

डा. रहबर आगे इस संदर्भ में लिखते हैं — "पांच सौ पृष्ठों का यह उपन्यास स्त्री-पुरुष के इसी संग्राम की ही गाथा है। साहूकारों को सूद देने के मामले में, थानेदारों को रिश्वत देने के मामले में, बिरादरी को डांड देने के मामले में और भाइयों के व्यवहार के मामले में धनिया होरी से लड़ती है कि भगवान ने तुम्हें तो खामखाह ही पुरुष बना दिया है, तुम्हें तो स्त्री होना चाहिए।"[95] इस दरिद्रता और लड़ाई-झगड़े में भी पति-पत्नी का जो प्रेम है उसका चरित्र भी प्रेमचन्द ने पहले ही पृष्ठ में खींच दिया है। जब होरी ने कहा कि मर्द साठे पर पाठे होते हैं तो धनिया बोली — "जाकर शीशे में मुंह तो देखो। तुम-जैसे मर्द साठे पर पाठे नहीं होते। दूध-

भी अंजन लगाने को तो मिलता नहीं , पाठे होंगे ।" होरी लकड़ी सम्हालता हुआ बोला —" साठे तक पहुंचने की नौबत ही न आएगी धनिया , इससे पहले ही चल देंगे ।" धनिया ने तिरस्कार किया — " अच्छा रहने दो , मत अशुभ मुंह से निकालो । तुम से कोई अच्छी तरह बात भी करे तो लगते हो कोसने ।" [96] धनिया-होरी के दाम्पत्य में लाख अभावों और विरोधों के होते हुए भी एक दाम्पत्य-रस है , जिसको प्रेमचन्द बराबर रेखांकित करते रहते हैं । यथा — " होरी कन्धे पर लाठी रखकर घर से निकला , तो धनिया द्वार पर खड़ी उसे देखकर देर तक देखती रही । उसके इन निराशा-भरे शब्दों ने धनिया के चोट खाए हुए हृदय में आतंकमय कंपन-सा डाल दिया । वह जैसे अपने नारीत्व के सम्पूर्ण तप और व्रत से अपने पति को अभयदान दे रही थी । उसके अन्तःकरण से जैसे आशीर्वादों का व्यूह-सा निकलकर होरी को अपने अन्दर छिपाए लेता था । विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तृण था , जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही थी ।" [97]

डा. मनोहर बंदोपाध्याय ने धनिया का चरित्रांकन करते हुए उसकी खूबियों और कमजोरियों को निम्नलिखित शब्दों में रेखांकित किया है —" शी इज़ एज टेण्डर इन हर हार्ट एज़ शी फिज़िकली टफ आउटवर्डली. शी रीसपेक्ट द आइडियल गुडनेस आफ हर हसबण्ड एण्ड सपार्टस हीम इवन व्हेन शी नोज द हसबण्ड इज़ लीडिंग द फेमिली टू केटास्ट्रोफिक एण्ड बाय हीज शीअर फोली । शी इज़ ए डाउन-टु-अर्थ रीआलिस्ट एण्ड इज़ कोनशियस आफ हार्ड ट्रुथ्स आफ लाईफ ... द आथर हेज मेड हर फुल आफ फ्लेश एण्ड ब्लड . शी हेज आल्सो द ऐसेन्शियल वीकनेस एण्ड स्ट्रेन्थ आफ ए पीजण्ट वुमन .. शी इज अन इक्वालेड इन आल द वीमेन कैरेक्टरर्स आफ प्रेमचन्द. शी विन्स द सिम्पथी आफ द रीडरर्स एज ए वाईफ , मधर , मधर-इन-ला एण्ड ए वुमन फोक आफ एन इण्डियन विलेज ." [98]

मालती :

"गोदान" उपन्यास का यह एक मध्यवर्गीय नगरीय शिक्षित नारी पात्र है । चौथे दशक के प्रारंभिक वर्षों में प्रेमचन्दजी ने जो इस नारी-पात्र का सृजन किया है उसमें अनेक संभावनाएं दृष्टि-गोचर होती है । यह एक गतिशील चरित्र है और उसमें निरंतर विकास हो रहा है । स्त्री-पुरुष में मैत्री-संबंध भी हो सकता है, उसकी परिकल्पना लेखक ने इस पात्र में की है । मालती का प्रारंभिक जीवन विलासमय है किन्तु बाद में प्रेमचन्दजी ने इसे अपने आदर्शों के अनुरूप ढाल दिया है । प्रारंभ में तितली और मधुमक्खी-सी दिखनेवाली मालती बाद में गंभीर और परिपक्व लगती है । उसमें वैचारिक तर्कशक्ति और गजब की आकर्षण शक्ति है । अपनी इन खूबियों के कारण शुरू में भौतिक सुख-साधनों के लिए वह बड़ी कुशलता से मि. खन्ना का शोषण करती है । धनिक पुरुषों को नचाते हुए भी उसकी दृढ़मूल धारणा है कि धन से आजतक किसी नारी के हृदय पर विजय नहीं पायी । कोई भी बुद्धिवादी पुरुष मालती की बौद्धिक "कंपनी" को न केवल पसंद कर सकता है, बल्कि उसके लिए लालायित भी रह सकता है, ऐसा उसका व्यक्तित्व है । किन्तु प्रो. मेहता के सम्पर्क से उसमें परिवर्तन आता है और वह सेवामार्ग की ओर अग्रसर होती है । वह गरीबों से फीस नहीं लेती । उसके व्यवहार में भी काफी मृदुता आ जाती है । वह अपने हाथों से भोजन बनाने लगती है और गांव के बच्चों को प्यार करती है । इसी सेवाभाव तथा बच्चों के प्रति वात्सल्य-भाव के कारण प्रो. मेहता की दृष्टि में वह ऊपर उठती है । उसमें वैचारिक गांभीर्य दृष्टिगत होता है । एक स्थान पर वह पुरुष की निर्दयता और नारी के मातृत्व को लेकर बड़ी गंभीर और ऊंची बात करती है —" पुरुष निर्दयी है माना, लेकिन है तो इन्हीं माताओं का बेटा । क्यों माता ने पुत्र को

ऐसी शिक्षा नहीं दी कि वह माता की — स्त्री जाति की पूजा करता ।" 99

वह विवाह को बंधन समझती है । वह प्रो. मेहता से कहती है —" क्या तुम इतना भी नहीं जानते कि कि नारी परीक्षा नहीं प्रेम चाहती है । परीक्षा गुणों को अवगुण, सुन्दर को असुंदर बनाने वाली चीज़ है । प्रेम अवगुणों को गुण बनाता है, असुंदर को सुंदर । मैंने तुमसे प्रेम किया, मगर तुमने मेरी परीक्षा ली ।" 100

अन्ततः प्रो. मेहता के प्रेम और विश्वास को प्राप्त कर वह परिपूर्ण होती है । ऐसा लगता है कि मेहता बुद्धि-रूप है, मालती हृदय-स्वरूपिणी है । दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । मालती को विवाह संबंध के स्थान पर मैत्री-संबंध ही अधिक अभिष्ट है । प्रेम संबंध को वह भौतिक धरातल पर लाने की आवश्यकता नहीं समझती । उसकी धारणा है कि विवाह के संकुचित क्षेत्र में व्यक्तित्व का पूर्ण विकास संभव नहीं है । विवाह मनुष्य को क्षुद्र स्वार्थ और संकीर्ण मोह में बांध देता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि अपनी शक्ति, अपनी संभावनाओं को विराट मानवता के कल्याण में नियोजित करने की भावना मालती के मन को निरंतर अनुप्राणित करती है । इस प्रकार विलासप्रिय स्वतंत्र मालती को प्रेमचंद अन्ततः सेवामयी, त्यागशील और एकनिष्ठ बनाकर अपना नारी-विषयक आदर्श यहाँ भी प्रस्तुत करते हैं ।

मालती विलायत से डाक्टर बनकर आई है । स्वतंत्र प्रकृति की इस युवती पर पाश्चात्य चिंतन-प्रणाली का काफी प्रभाव है और वह स्त्री-पुरुष समानता का पुरस्कार करती है । प्रारंभ में प्रेमचन्द उसका चरित्रांकन इस प्रकार करते हैं —" आप इंग्लैण्ड से डाक्टरी पढ़ आयी हैं और अब प्रेक्टिस करती हैं । तालुकेदारों के महलों में उनका बहुत प्रवेश है । आप नवयुग की साक्षात् प्रतिमा है । गात कोमल, चपलता कूटकर भरी हुई,

Smt. Hansa Mehta Library, M. S. University of Baroda

झिझक या संकोच का नाम नहीं , मेकअप में प्रवीण , कला की हाजिर-जवाब , पुरुष मनोविज्ञान की अच्छी जानकार । आमोद-प्रमोद को जीवन का तत्व समझने वाली , लुभाने और रिझाने की कला में निपुण । जहां आत्मा का स्थान है , वहां प्रदर्शन ; जहां हृदय का स्थान है वहां हाव-भाव ; मनोद्‌गारों पर कठोर निग्रह , जिसमें इच्छा या अभिलाषा का लोप-सा हो गया ।" [101]

परन्तु नारी का इस तरह का स्वच्छंद , उच्छृंखल रूप प्रेमचन्दजी को नापसंद था । वे नारी को त्याग , सेवा और ममता की प्रतिमूर्ति मानते थे , अतः अन्त में वे उसे सेवाशील और आदर्शवादी बना देते हैं । प्रो. मेहता के संपर्क में आकर उसकी ये तमाम उच्छृंखल प्रवृत्तियाँ उदात्त प्रवृत्तियों में परिवर्तित हो जाती हैं । उनके परस्पर प्रेम की परिणति विवाह में नहीं होती , बल्कि उन दोनों की मैत्री का निश्छल रूप ही हमारे सम्मुख प्रकट होता है । मालती वैवाहिक संबंधों के स्थान पर मैत्री को वरीयता प्रदान करती है । प्रेम के भौतिक रूप की अपेक्षा , उसके आध्यात्मिक रूप को वह अधिक अंगीकृत करती है । यथा —" मित्र बनकर रहना , स्त्री-पुरुष बनकर रहने से कहीं सुखकर है , तुम मुझसे प्रेम करते हो , मुझ पर विश्वास करते हो । ... मैं भी तुमसे प्रेम करती हूं , तुम पर विश्वास करती हूं ... हमारी पूर्णता के लिए , हमारी आत्मा के विकास के लिए और क्या चाहिए ?" [102]

इस तरह आरंभ में मालती ~~कx~~ के स्वच्छंद एवं उन्मुक्त प्रेम का वर्णन करके , उपन्यास के अन्तताक जाते-जाते उसे वे त्यागी , परोपकारी , स्नेहार्द्र समाज-सुधारिका के रूप में प्रस्तुत करते हैं । "गोदान" में अन्य बातों में प्रेमचन्द का यथार्थवादी रूप मिलता है , किन्तु नारी के चरित्रांकन में भारतीय नारी के आदर्श को वे एक क्षण के लिए भी विस्मृत नहीं करते । हाँ , विवाह के स्थान पर मैत्री की बात करके उन्होंने आधुनिक शिक्षित नारी के एक नये आयाम को जरूर प्रस्तुत किया है ।

सिलिया :

"गोदान" उपन्यास का यह एक सशक्त नारी-पात्र है। वह जाति की चमारिन है। पंडित मातादीन से उसने विवाह नहीं किया है, सामाजिक मानदंडों के आधार पर तो उसे मातादीन की रखैल ही कह सकते हैं, परन्तु मातादीन के प्रति उसमें सेवा-भावना और पति-भक्ति कूट-कूट कर भरी है। मातादीन का खेतीबाड़ी का काम वही संभालती है। अकेले कई-कई मजदूरों का काम करती है। सिलिया को प्रेम करने में मातादीन का अपना स्वार्थ है, किन्तु सिलिया के प्रेम में किसी प्रकार का स्वार्थ नहीं है। "कायाकल्प" की गोपी की तरह सिलिया भी एक समर्पित नारी है। वह मातादीन को अपने मन और आत्मा से पति मान चुकी है। किन्तु महुआडन वाले प्रसंग में जब मातादीन सिलिया का पानी उतार देता है और उसे उसका स्थान बता देता है, तब सिलिया के आत्माभिमान को ठेस पहुंचती है। वह पंख-कटी पक्षिणी की तरह फड़फड़ाती है। यथा - "सिलिया ने उस पक्षी की भाँति, जिसे मालिक ने पर काटकर पिंजरे से निकाल दिया हो, मातादीन की ओर देखा। उस चितवन में वेदना अधिक थी या भर्त्सना, यह कहना कठिन है। पर उसी पक्षी की तरह उसका मन फड़फड़ा रहा था और ऊँची डाल पर उन्मुक्त वायुमंडल में उड़ने की शक्ति न पाकर उसी पिंजरे में जा बैठना चाहता था। ... वह ब्याहता न होकर भी संस्कार में और व्यवहार में और मनोभावना में ब्याहता थी, और अब मातादीन चाहे उसे मारे या काटे, उसे दूसरा आश्रय नहीं है, दूसरा अवलम्ब नहीं है।" 103 उसी वक्त सिलिया की माँ उसकी टोकरी को फेंककर उसे गाली देते हुए कहती है — "रांड, जब तुझे मजूरी ही करनी थी, तो घर की मजूरी छोड़कर यहाँ क्या करने आयी। जब ब्राम्हन के साथ रहती है, तो ब्राम्हन की तरह रह। सारी बिरादरी में नाक कटवाकर भी चमारिन ही बनना था, तो यहाँ क्या घी का लोंदा लेने आयी थी। चुल्लू-भर पानी में डूब मरती।" 104

उस समय झिंगुरीसिंह और दातादीन वगैरह दौड़कर वहाँ आते हैं और झिंगुरीसिंह सिलिया के बाप हरखू से पूछता है कि — "क्या बात है चौधरी, किस बात का झगड़ा है?" तब उसके जवाब में हरखू कहता है — "झगड़ा कुछ नहीं है ठाकुर, हम आज या तो मातादीन को चमार बनाकर छोड़ेंगे, या उनका और अपना रक्त एक कर देंगे। सिलिया कन्या जात है, किसी-न-किसी के घर जायगी ही। इस पर हमें कुछ नहीं कहना है; मगर उसे जो कोई भी रखे, हमारा होकर रहे। तुम हमें बाम्हन नहीं बना सकते, मुदा हम तुम्हें चमार बना सकते हैं। हमें बाम्हन बना दो, हमारी सारी बिरादरी बनने को तैयार है। जब यह समरथ नहीं है, तो फिर तुम भी चमार बनो। हमारे साथ खाओ-पिओ, हमारे साथ उठो-बैठो। हमारी इज्जत लेते हो, अपना धरम हमें दो।" [105]

झगड़ा बढ़ जाने पर चमार ताव में आ जाते हैं और मातादीन को पकड़कर उसके मुँह में हड्डी का एक बड़ा-सा टुकड़ा डाल देते हैं। मातादीन द्वारा त्याग दिए जाने पर धनिया उसे आश्रय देती है। उधर अग्निकांड करवाके और काशी पंडितों को बुलाकर मातादीन का प्रायश्चित करवाया जाता है। जिस समय यह कांड हुआ था सिलिया गर्भवती थी और वह होरी के घर में ही पुत्र को जन्म देती है। पुत्र-जन्म की बात सुनकर मातादीन पुनः सिलिया को देखने जाता है। संयोगवश पुत्र की मृत्यु हो जाती है। मातादीन में कुछ परिवर्तन आता है। वह अपने हाथों से पुत्र को दफनाता है। उसके इस व्यवहार से सभी लोग उसके इस साहस और दृढ़ता की तारीफ करते हैं। मातादीन अब सिलिया के साथ खुल्लम-खुल्ला रहने को तैयार हो जाता है। सिलिया उसे कहती है — "बाम्हन कैसे रहोगे?" तब मातादीन कहता है — "मैं बाम्हन नहीं चमार ही रहना चाहता हूँ। जो अपना धर्म पाले, वही बाम्हन है। जो धर्म से मुँह मोड़े वही चमार है।" [106]

उपन्यास के अन्त में मातादीन और सिलिया साथ-साथ रहने लगते हैं । ऐसा लगता है कि सिलिया की तपश्चर्या सफल हुई है । इस प्रकार सिलिया के रूप में प्रेमचन्दजी ने एक सती-साध्वी नारी का चित्रण किया है । समाज के प्रचलित मानदण्डों के अनुसार कोई उसे कुल्टा कह सकता है, परन्तु उसकी भक्ति और त्याग और सेवा के सामने हजारों-हजार ब्याहताओं को न्यौछावर कर सकते हैं । यह एक तथ्य है कि कच्छ के महाराव लखपतसिंह की मृत्यु के उपरांत उनकी एक भी ब्याहता रानी सती नहीं हुई थीं, सती होनेवाली सब उनकी रखिताएं (रखैलें) थीं । [107]

झुनिया :

"गोदान" उपन्यास का एक नारी-पात्र है । वह भोला अहीर की लड़की है । विधवा है । गोबर से उसका प्रेम हो जाता है । इस प्रेम के फलस्वरूप उसे गोबर का गर्भ ही रह जाता है । गोबर घबड़ाता है । अतः उसे अपने घर के पास छोड़कर भाग जाता है । उसे अपने माता-पिता का स्वभाव पता है । वह सोचता है कि पहले थोड़ा गुस्सा करेंगे, पर बाद में झुनिया को अपना लेंगे । और ऐसा ही होता है । होरी पहले तो आगबबूला हो जाता है, पर बाद में उसका मन पसीजता है । झुनिया कहती है -" दादा, अब तुम्हारे सिवाय मुझे दूसरा ठौर नहीं है, मुझे दुरदुराओ मत ।" [108] झुनिया की इस बात से होरी पिघल जाता है और उसे अपने यहाँ आश्रय देता है । इस प्रकार बिना विवाह के होरी और धनिया अपनी बहू झुनिया को आश्रय देते हैं और अपने घर में रखते हैं, इस बात से समाज के लोग नाराज होते हैं । गोबर शहर जाकर कुछ कमाई करके लौटता है तो समाज के लोग उस पर दो सौ रूपये का जुर्माना ठोक देते हैं । होरी अपना सब अनाज उठाकर दे देता है । गोबर से यह जुल्म बर्दाश्त नहीं होता, अतः झुनिया को लेकर वह पुनः शहर भाग जाता है । गोबर

के आने के बाद झुनिया का भी व्यवहार बदल जाता है। वह होरी-धनिया के उपकारों को, उनकी उदारता को भूल जाती है और गोबर के साथ शहर जाने के लिए तैयार हो जाती है, बल्कि वही गोबर को उकसाती है। धनिया का मातृ-हृदय गोबर के पुत्र मुन्नू के चले जाने से दुखी हो जाता है। वह बार-बार झुनिया को कोसती और गरियाती है — "वह बार-बार सोचती, उसने झुनिया के साथ ऐसी कौन-सी बुराई की थी, जिसका उसने यह दण्ड दिया। डाइन ने आकर उसका सोने-सा घर मिट्टी में मिला दिया। गोबर ने तो कभी उसकी बात का जवाब भी नहीं दिया था। इसी राँड ने उसे फोड़ा और वहाँ ले जाकर न जाने कौन-कौन-सा नाच नचाएगी। यहाँ ही यह उसे बच्चों की भाँति बहुत परवाह करती थी। उसे तो अपनी मिस्सी-काजल, माँग-चोटी से ही छुट्टी नहीं मिलती। ... इसी चुड़ैल ने उसे कुछ खिला-पिलाकर अपने वश में कर लिया। ऐसी मायाविन न होती तो यह टोना ही कैसे करती? कोई बात न पूछता था। भौजाइयों की लातें खाती थी। यह बुग्गा मिल गया तो आज रानी हो गई।"[109] यद्यपि उपर्युक्त कथन से धनिया के मन की भड़ास ही निकली है, तथापि उससे झुनिया के चरित्र पर यत्किंचित प्रकाश भी पड़ा है।

रूपा :

रूपा "गोदान" के नायक होरी की बेटी है। शादी योग्य हो जाने पर होरी को उसके विवाह की चिन्ता होने लगती है। पंडित मातादीन होरी की जितनी उम्रवाले रामसेवक के साथ उसका विवाह कराने का सुझाव लाते हैं। लेकिन रूपा तो फूल-सी कोमल है। धनिया भी इस विवाह का विरोध करती है, लेकिन गरीबी के कारण उसका पल्ला भी हल्का पड़ जाता है। होरी ने जीवन में बड़ी-बड़ी चोटें सही थीं, मगर यह चोट

उसके लिए सबसे गहरी थी । "झूठी मरजादा" के खयालों में कर्ज में धँसे होरी को कर्ज फेड़ने के लिए ही यह समझौता करना पड़ता है । रूपा का विवाह रामसेवक से हो जाता है । रामसेवक अधेड़ है । पर रूपा बहुत ही खुश है । यहाँ प्रेमचन्दजी ने ग्रामीण नारी-मन का बिलकुल वस्तुनिष्ठ और यथार्थ चित्रण किया है । रूपा का बचपन अभावों और भयंकर गरीबी के बीच से गुजरा है । ऐसी अभावग्रस्त लड़कियों में वैभव की विशेष रूप से चाहत रहती है । रामसेवक धनवान है । अतः रूपा स्वयं को रानी -सा महसूस करती है । पिता के घर में उसकी अनेक साधें अर्थाभाव में घुट-घुट कर रह गयी थी । अधेड़ रामसेवक भी रूपा को पाकर न्याल हो गया था । यह भी एक सामाजिक तथ्य है कि ऐसे पुरुष अपनी बीवी को बहुत लाड़ लड़ाते हैं । ब्रज में तो कहावत है — " दुजवर को ब्याहूंगी और पलकों बैठी राज करूंगी । " रूपा के लिए तो रामसेवक पति है । उसके प्रौढ़ या अधेड़ होने से उसकी पति-भावना और पति-भक्ति में कोई अंतर नहीं आता है । वस्तुतः यह ग्रंथि कुछ शिक्षित नारियों में पायी जाती है । दूसरे रूपा अपनी गृहस्थी में , इस विवाह से इसलिए भी खुश है कि वह अपने माँ-बाप को खुश देखना चाहती है । समवयस्क से विवाह करके वह अपने माँ-बाप को और कर्ज के दलदल में फँसाना नहीं चाहती थी । इस प्रकार रूपा एक ग्रामीण , अनपढ़ किन्तु समझदार और अपनी माँ धनिया की तरह पति को चाहने वाली नारी है ।

सोना :

"गोदान" उपन्यास का एक नारी-पात्र है । वह होरी-धनिया की छोटी बेटी और रूपा की छोटी बहन है । यह बारह वर्षीय ग्रामीण किशोरी दैहिक -गठन के कारण युवती-सी लगती है । उसे अपने पिता की आर्थिक अवस्था का परिपूर्ण ज्ञान है । वह बहुत ही समझदार है । अज्ञेय का कथन है कि दुःख मनुष्य को मांजता

है । सोना ने अपने बचपन में ही अपने दादा (पिता) की आर्थिक दुरवस्था को देख लिया है । अतः वह नहीं चाहती कि उसके विवाह के समय उसके माता-पिता को ऋण लेना पड़े । उसकी दृष्टि में पति-पत्नी का पारस्परिक कर्तव्य-पालन ही प्रेम है । यह समझदारी उसमें गरीबी के कारण आयी है । लगता है वह असमय ही वयस्का हो गई है । उसके मन में अपने होने वाले पति के प्रति पूर्वराग है । वह अत्यंत विचारशील एवं संयमित स्वभाव की लड़की है । जिन रूढ़ियों से नारियों का जीवन नरक-सा हो जाता है उनका विरोध उसमें मिलता है । अपने माता-पिता की सहृदयता तथा भलमनसाहत पर उसे नाज़ है । उसमें कहीं भी किसी प्रकार की उच्छृंखलता के दर्शन नहीं होते । अपने विकल पिता की दरिद्रावस्था से वह पूर्णरूपेण परिचित है , अतः वह दृढ़ निश्चय करती है कि वह किसी ऐसे लड़के से विवाह करे जो दहेज न ले । इसलिए वह सिलिया से कहती है कि अगर सोनारी वालों ने (उसका रिश्ता सोनारी गांव में तय हुआ था) एक पैसा भी दहेज में लिया तो वह शादी नहीं करेगी । एक स्थान पर इस कुप्रथा के बारे में वह कहती है — "मां-बाप को अगर भगवान ने दिया हो तो खुशी से जितना चाहे लड़की को दें , मैं मना नहीं करती , लेकिन जब वे पैसे-पैसे को तंग हो रहे हैं , आज महाजन नालिश करके लिलाम करा ले तो कल मजूरी करनी पड़े तो कन्या का धरम यही है कि डूब मरे । घर की जमीन जैजात तो बच जायेगी । रोटी का सहारा तो रह जाएगा । मां-बाप चार दिन को मेरे नाम को रोकर संतोष कर लेंगे । यह तो न होगा कि मेरा ब्याह करके उन्हें जनम भर रोना पड़े ।" (110) अतः हम कह सकते हैं कि सोना उन लड़कियों का प्रतिनिधित्व कर रही है जो लड़कियां स्वयं ही अपने पर तथा अपने मां-बाप पर अत्याचार करने वाली रूढ़ियों का विरोध करती हैं ।

<u>नोहरी :</u>

प्रेमचन्द के उपन्यासों में सती-साध्वी स्त्रियां प्रायः मिलती हैं, किन्तु ऐसा नहीं है कि प्रेमचन्द ने कुलटा, कर्कशा, पर-पुरुषगामिनी स्त्रियों को बिलकुल अनदेखा कर दिया है। "गोदान" उपन्यास की नोहरी एक ऐसा ही पात्र है। वह एक विपुलवासना-वती औरत है। विधवा होने के तीन माह के भीतर ही वह भोला अहीर से विवाह कर लेती है। भोला के साथ विवाह करते ही वह घर की स्वामिनी हो जाती है। भोला को तो वह अपनी उंगलियों पर नचाती है। जमींदार xxxxxxxx के कारिन्दे नोखेराम को भी उसने अपने प्रेम-पाश में फंसाकर रखा है। नोखेराम से संबंध के कारण वह अपने को किसी जमींदारनी से कम नहीं समझती है। घर में झगड़ा करके वह भोला को भी लेकर नोखेराम के यहां चली जाती है। वहां नोहरी तो राजरानी की तरह रहती है, किन्तु भोला की एक कौड़ी की भी कदर नहीं है। एकाध दो महीने तो उसकी कुछ खातिर हुई, पर बाद में नोखेराम उससे नौकर की तरह काम लेने लगा था। चारपाई तक उससे बिछवाता था। तब बेचारा भोला खून का घूंट पीकर रह जाता था। भोला सोचता है कि घर में लड़ाई-झगड़े के बावजूद उसे किसी की टहल तो नहीं करनी पड़ती थी। अतः एक दिन वह नोहरी को घर लौट जाने के लिए कहता है। उस पर नोहरी ऐंठकर बोलती है — "वहां से लात खाकर अx आये, वहां फिर जाओगे? तुम्हें लाज भी नहीं आती।" 111 निम्न कथन में नोहरी के चरित्र का संकेत मिलता है — "भोला जानता था, नोहरी विरोध करेगी। इसका कारण भी वह कुछ-कुछ सम-झता था, कुछ देखता भी था, उसके यहां से भागने का एक कारण यह भी था। यहां उसकी तो कोई बात न पूछता था; पर नोहरी की बड़ी खातिर होती थी। प्यादे और शहने तक उसका दबाव मानते थे। उसका जवाब सुनकर भोला को क्रोध आया; लेकिनx लेकिन करता क्या? नोहरी को छोड़कर चले जाने का साहस उसमें होता, तो नोहरी भी झख मारकर उसके पीछे-पीछे चली

जाती । अकेले उसे यहाँ अपने आश्रय में रखने की हिम्मत नोखेराम में न थी । वह टट्टी की आड़ से शिकार खेलनेवाले जीव थे, मगर नोहरी भोला के स्वभाव से परिचित थी××× हो चुकी थी ।" 112

नोहरी सोचती है कि भोला अब बहुत दिनों तक माननेवाला नहीं है । अतः वह होरी-धनिया को पटाने की कोशिश करती है । सोना का ब्याह सिर पर था और रुपये-पैसों का कोई बन्दोबस्त नहीं था । अतः वह सोचती है कि "अगर वह सोना के ब्याह के लिए कुछ रुपये दे दे, तो कितना यश मिलेगा । सारे गाँव में उसकी चर्चा हो जाएगी । लोग चकित होकर कहेंगे, नोहरी ने इतने रुपये दे दिए । बड़ी देवी है । होरी और धनिया घर-घर उसका बखान करते फिरेंगे । गाँव में उसका मान-सम्मान कितना बढ़ जायगा । वह उंगली दिखाने वालों का मुंह सी देगी । फिर किसकी हिम्मत है कि उस पर हँसे, या उस पर आवाजें कसे ? अभी सारा गाँव उसका दुश्मन है । तब सारा गाँव उसका हितैषी हो जायगा । इस कल्पना से उसकी मुद्रा खिल गई ।" 113 इस प्रकार नोहरी एक चालाक और व्यवहारकुशल औरत भी है । लोगों को वश करने की तरकीब उसे आती है । अपने इन्हीं लटकों-झटकों से वह लोगों को नचाती है ।

<u>दुलिया :</u>

"गोदान" उपन्यास का यह एक उदार नारी-पात्र है । उसमें कोमलता, मातृत्व तथा दयालुता जैसे मानवीय भावों की प्रधानता मिलती है । वह दोहरी देह की, कानी-कुटी, नाटी और कुरूप स्त्री है । परन्तु उसका हृदय बहुत ही खूबसूरत है । वह दूसरों के दुःख-दर्द में हाथ बंटाती है । उसका पति एक्का चलाता है और वह खुद लकड़ी की दुकान पर बैठती है । जब झुनिया के कराहने की आवाज़ वह सुनती है, तो तुरंत दौड़ आती है और दाई की व्यवस्था करती है । आत्मीयता के कारण वह झुनिया के लिए हररोज हलुआ पकाकर लाती है । झुनिया को बराबर

दूध नहीं आता है । अतः उसके बच्चे को वह अपने स्तन का दूध पिलाती है । इस तरह हम देख सकते हैं कि इस सामान्य-सी नारी में दया, माया, ममता के गुण कूट-कूट कर भरे हैं ।

<u>मीनाक्षी :</u>

"गोदान" उपन्यास की मीनाक्षी रायसाहब अमरपालसिंह की पुत्री है । उसका विवाह दिग्विजयसिंह से हुआ है । मीनाक्षी आधुनिक युग की एक सुशिक्षित नारी है । वह समझ जाती है और अपने अधिकारों के प्रति सचेष्ट है । आधुनिक नारी स्वयं को पति की चेरी नहीं सहचरी समझती है । वह पति को परमेश्वर नहीं साथी समझती है । पति यदि लंपट, विलासी, परस्त्रीगामी और कुचरित्र हो तो उसे छोड़ा भी जा सकता है, ऐसे प्रगतिशील विचारों की धनी मीनाक्षी है । वह न केवल विरोध और विद्रोह करती है, बल्कि अपने ऐयाश और विलासी पति दिग्विजयसिंह को तलाक भी देती है और विवाह के बंधन से मुक्त हो जाती है । हमारे राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने पंचवटी काव्य में नारी के प्रति सहानुभूति और पुरुष के प्रति व्यंग्य के भाव निम्न-लिखित पंक्तियों में व्यक्त किए हैं —

" नरकृत शास्त्रों के सब बंधन, हैं नारी ही को लेकर ;
अपने लिए सभी सुविधाएं पहले ही कर बैठे नर ।" 114

परन्तु इन "नरकृत" शास्त्रों की आज्ञा नकारती है । पुरुष कैसा भी हो — कुरूप, कोढ़ी, लंपट, विलासी, पुरुषत्वहीन — किन्तु वह परमेश्वर होता है, मीनाक्षी इस अवधारणा को नकारती है । इस प्रकार मीनाक्षी के रूप में प्रेमचन्दजी ने एक आधुनिक, स्वतंत्रचेत्ता, विद्रोही स्वर को जन्म दिया है । आधुनिक युग की शिक्षित नारी के तेवरों को प्रेमचन्दजी पहचानने लगे थे इसका संकेत हमें यहां मिल जाता है ।

शैव्या :

"मंगलसूत्र" प्रेमचंदजी का एक अपूर्ण उपन्यास है । उसमें मुश्किल से तेरह हजार शब्द होंगे । उपन्यास जितना लिखा गया है, उससे प्रतीत होता है कि उसके नायक देवकुमार रहेंगे । शैव्या इन्हीं देवकुमार की धर्मपत्नी हैं । देवकुमार लेखक हैं और आजीवन आर्थिक अभावों से जूझते रहे हैं । शैव्या उनसे प्रसन्न तो नहीं थी, किन्तु पुत्र संतकुमार जब देवकुमार की बात-बात पर आलोचना करता है, उनको खरी-खोटी सुनाता है, उनको एक असफल व्यक्ति बताता है तब वह उसे डाँट देती है और पति का पक्ष लेती है । वह अत्यन्त शीलवती और पतिव्रता नारी है । आर्थिक अभाव में जीवन जब नीरस एवं कष्टसाध्य हो जाता है, तब गृहस्थ-जीवन की चिन्ताओं से तंग आकर कुछ कटु शब्द बोलने लगती हैं, अन्यथा वह एक मधुर-भाषिणी महिला है । बीच में एक बार जब देवकुमार की तबियत खराब होती है, तब वे उसके हाथ में बेटी पंकजा के विवाह-हेतु पाँच हजार रुपये रखते हैं और दूसरे सब कामों से अपने को अलग कर लेते हैं । पति के निःस्पृह और आदर्शवादी व्यवहार से वह दुःखी रहती है ।

पुष्पा :

शैव्या की तुलना में पुष्पा का चरित्र कुछ अधिक उभरा है । वह देवकुमार के पुत्र संतकुमार की पत्नी है । उसके पिता डाक्टर थे । अतः उसका बचपन ऐश्वर्य में बीता था । परन्तु संतकुमार के यहाँ उसे कई बार आर्थिक अभावों से गुजरना पड़ता था । कई बार पति-पत्नी में चकमक झरती रहती थी । उन दोनों के बीच जो वार्तालाप होता है, उससे उसके चरित्र पर कुछ प्रकाश पड़ता है । वह भी "गोदान" की मीनाक्षी की भाँति स्त्री को पति की चेरी नहीं सहचरी मानती है । स्त्री की पराधीनता के मूल में उसकी आर्थिक पराधीनता को वह देखती है । एक स्थान

पर वह संतकुमार से कहती है —" यदि मैं तुम्हारी आश्रिता हूं तो तुम भी मेरे आश्रित हो । मैं तुम्हारे घर में जितना काम करती हूं इतना ही काम दूसरों के घर में करूं तो अपना निर्वाह कर सकती हूं ।" 115

इस संदर्भ में पुष्पा मिस बटलर की बात करती है । मिस बटलर आजीवन क्वांरी रहकर डाक्टरी का व्यवसाय करते हुए सम्मान की जिन्दगी जी रही है । पुष्पा मिस बटलर के संबंध में कहती है — "उनका निजी जीवन कैसा था, मैं नहीं जानती । संभव है वह हिन्दू गृहिणी के आदर्श के अनुकूल न रहा हो, मगर उनकी इज्जत सभी करते हैं, और उन्हें अपनी रक्षा के लिए किसी पुरुष का आश्रय लेने की कभी जरूरत नहीं हुई ।" 116 संतकुमार दुविधा में पड़कर जब कहते हैं कि सभी स्त्रियां मिस बटलर नहीं हो सकतीं । पुष्पा आवेश में आकर कहती है कि क्यों अगर वह डाक्टरी पढ़कर अपना व्यवसाय कर सकती हैं, तो मैं क्यों नहीं कर सकती ? उसके जवाब में संतकुमार कहते हैं कि उनके समाज में और हमारे समाज में बड़ा अंतर है । संतकुमार की इस बात पर पुष्पा बड़ी तिलमिलाने वाली बात कर देती है —" अर्थात् उनके समाज के पुरुष शिष्ट हैं, शीलवान हैं, और हमारे समाज के पुरुष चरित्र-हीन हैं, लम्पट हैं, विशेषकर जो पढ़े-लिखे हैं ।" 117 इस प्रकार हम देख सकते हैं कि पुष्पा एक स्वतंत्रचेत्ता, तीखे तेवरों वाली, स्त्री-पुरुष गैरबराबरी का विरोध करने वाली एक तेज-तर्रार महिला है ।

मिस बटलर :

"मंगलसूत्र" उपन्यास की मिस बटलर एक ईसाई नारी-पात्र है । डाक्टरी का पढ़कर अपना व्यवसाय चला रही है । उसने विवाह नहीं किया है । क्वांरी रहकर आत्म-सम्मान के साथ जीवन-यापन कर रही है । सभी लोग उनकी इज्जत करते हैं । मिस बटलर जो कमाती थी अपनी मर्जी से अपने ऊपर खर्च कर सकती है । संतकुमार की पत्नी पुष्पा को मिस बटलर का जीवन आकर्षित करता है

और वह अपने पति के सामने अक्सर उसका उदाहरण देती रहती है । संतकुमार से वह कहती है —" सब मैं जो कुछ कमाऊंगी वह मेरा होगा । यहां मैं चाहे प्राण भी दे दूं पर मेरा किसी चीज़ पर अधिकार नहीं । तुम जब चाहो मुझे घर से निकाल सकते हो ।"[118] इस प्रकार मिस बटलर के चरित्र द्वारा लेखक दोनों समाजों की ~~बिसदृशता~~ विसदृशता को रेखांकित करते हैं ।

तिब्बी :

तिब्बी " मंगलसूत्र" उपन्यास का एक ~~प्रमुख~~ कन्या नारी-पात्र है । वह जज साहब की इकलौती बेटी है । वह पढ़ी-लिखी , सुंदर और सुशील लड़की है । आधुनिक युग की होते हुए भी उसके मन में पुरुषों को आकर्षित करने की भावना लेश-मात्र भी नहीं है । उसे अपने सौन्दर्य पर अभिमान है । तिब्बी की अवज्ञा से युवक निराश भी होते हैं । किन्तु संतकुमार के संयम और विचारशीलता के कारण वह उनकी ओर कुछ खींचती जा रही है । एक स्थान पर वह कहती है —" मैं ऐसे मनुष्य की खोज में हूं , जो मेरे हृदय में सोये हुए प्रेम को जगा दे ।"[119] किन्तु पाठक जानते हैं कि संतकुमार का प्रेम एक छलावा के सिवाय कुछ नहीं , क्योंकि वह एक सोची-समझी योजना के तहत इस भोली-भाली कन्या के साथ छल कर रहा है । संतकुमार का एडवोकेट सिन्हा उसे यह सलाह देता है कि वह तिब्बी से संबंध बढ़ाये क्योंकि उसके पिता जज है । संतकुमार अपनी पत्नी की बेवकूफी , निष्ठुरता और फूहड़पन की शिकायत करता रहता है और स्वयं को एक वफादार पति के रूप में प्रस्तुत करता है । अतः आगे क्या हो सकता है उसकी कल्पना की जा सकती है । इनके कांइयापन के प्रकट होने पर तिब्बी का दिल टूट सकता है ।

एक बात यहां ध्यातव्य है कि "मंगलसूत्र " के नारी पात्रों के संदर्भ में पूर्ण रूप से कुछ भी कहा नहीं जा सकता , क्योंकि उपन्यास अपूर्ण है ।

प्रेमचन्द के उपन्यासों के गौण नारी-पात्र :

प्रेमचन्द की औपन्यासिक सृष्टि में जो मुख्य-मुख्य नारी पात्र हैं, उनकी चर्चा पूर्ववर्ती ~~पृष्ठों~~ पृष्ठों में कर दी गई है। यहाँ कुछेक गौण पात्रों का उल्लेख-भर किया गया है जिनकी यथेष्ट चर्चा या उल्लेख ~~अथवा~~ प्रबंध में अन्यत्र नहीं किया गया है।

ऐसे गौण नारी-पात्रों में सुवामा, सुशीला (वरदान); सुभद्रा, गंगाजली, जाह्नवी (सेवासदन); ~~[illegible]~~ शीलमणि (प्रेमाश्रम); सुभागी, ताहिरअली की तीन बीवियाँ, ताहिरअली की सौतेली माँ, जाह्नवी (रंगभूमि); वागीश्वरी, रामप्रिया, रोहिणी, वसुमती, निर्मला, मंगला (कायाकल्प); जग्गो, मानकी, जागेश्वरी, जोहरा (गबन); कल्याणी, कृष्णा, रंगीलीबाई (निर्मला); रेणुका (कर्मभूमि); आदिवासी युवती, गोविन्दी (गोदान) आदि की परिगणना कर सकते हैं। "मंगलसूत्र" जो अपूर्ण उपन्यास है, उसमें गौण और मुख्य का निर्णय करना कठिन है। हो सकता है कि कई नारी-पात्र आ ही न पाये हों।

निष्कर्ष :

अध्याय के समग्रावलोकन के उपरांत हम निम्नलिखित निष्कर्षों तक सहजतया पहुंच सकते हैं :—

(1) प्रेमचन्द के नारी-पात्रों में ग्रामीण क्षेत्र के नारी पात्र अधिक मिलते हैं।

(2) चिंतनप्रधान नारी (वुमैन इन कंटैम्प्लेशन) के स्थान पर क्रियाप्रधान नारी (विमैन इन एक्शन) के रूप प्रेमचंद में अधिकांशतः मिलते हैं।

(3) प्रेमचन्द के नारी-पात्रों में संघर्ष का माद्दा अधिक मिलता है। जीवन के हर क्षेत्र में वह संघर्ष करती हुई दिखाई पड़ती

हैं । वे साहसी और हिम्मतवान हैं । कई बार तो यह संघर्ष का यह माद्दा उनमें पुरुषों से भी अधिक मात्रा में पाया जाता है ।

§4§ प्रेमचन्द के नारी-पात्रों में हमें समाजगत और स्थितिगत वैविध्य मिलता है । उनमें रानी जाह्नवी और देवप्रिया जैसी राज-रानियां हैं, तहसिलदारिन और जमीनदारिन हैं, किसान-स्त्रियां मजदूरिनें हैं, भोली और जोहरा जैसी वेश्याएं हैं, विधवाएं हैं, गृहस्थिनें हैं, कन्याएं हैं, प्रौढ़ाएं और वृद्धाएं हैं । और इन सबको बड़ा ही वस्तुनिष्ठ चित्रण प्रेमचन्दजी ने किया है ।

§5§ प्रेमचन्द जी औपन्यासिक नारी-सृष्टि में विरजन, सुमन, निर्मला, जालपा, सिलिया, गायत्री, सुधा, सुमित्रा, लौंगी, मुन्नी, सुखदा, सकीना, सोफिया, धनिया, पुष्पा, मालती, मीनाक्षी जैसे पात्र पाठकों को बरबस मोह लेते हैं ।

§6§ प्रेमचन्द की कला में एक विकास परिलक्षित होता है । वे क्रमशः आदर्श से यथार्थ की ओर गये हैं, किन्तु उनकी भारतीय नारी-विषयक कल्पना और आदर्शवादी अवधारणा में कोई खास परिवर्तन नहीं आया है । अपनी नारी-सृष्टि में वे सती-साध्वी नारियों को विशेष रूप से चित्रित करते हैं । मालती जैसी तितलीनुमा नारी भी अंततः सेवा और त्याग के पथ पर अग्रसरित होने लगती है ।

§7§ प्रेमचन्दजी की नारी-सृष्टि में गांधीयुग का प्रभाव परिलक्षित किया जा सकता है ।

§8§ जिस प्रकार आंग्ल उपन्यासकार एमिल जोला निम्नतम वर्ग के पात्रों में भी मानवीय गरिमा को निरूपित करने में सिद्धहस्त है, वैसे ही प्रेमचन्दजी भी, निम्न से निम्न तर कोटि की स्त्रियों में मानवता के दीयों को झिलमिलाते हुए देखते हैं ।

§9§ डा. इन्द्रनाथ मदान को प्रेमचन्दजी ने कहा था कि मेरा नारी का आदर्श है एक ही स्थान पर त्याग, सेवा और

पवित्रता का केन्द्रित होना । त्याग बिना फल की आशा के हो, सेवा सदैव बिना असंतोष प्रकट किए हो और पवित्रता सीज़र की पत्नी की भाँति ऐसी हो, जिसके लिए पछताने की आवश्यकता न पड़े । उनके उपन्यासों में साद्यन्त उन्होंने इस अवधारणा को कायम रखा है ।

§10§ दलित नारी-पात्रों की सृष्टि अत्यन्त सशक्त ढंग से यहाँ हुई है । इस संदर्भ में शैलेश मटियानी प्रेमचन्द के साथ तुलनीय समझे जा सकते हैं ।

§11§ प्रेमचन्दजी की औपन्यासिक नारी-सृष्टि में अनेक ऐसी नारियाँ मिलती हैं जो दहेज प्रथा के कारण अनमेल-विवाह की शिकार हुई हैं ।

XXXXXX=========XXXXXX

:: सन्दर्भ सन्दर्भानुक्रम ::

§1§ विवेकानंद पत्रिका : इण्डियन वुमन § एजिज : पृ० 388 ।
§2§ हिन्दी उपन्यासों में नारी : डा० शैल रस्तोगी : पृ० 51 ।
§3§ लाईफ एण्ड वर्क आफ प्रेमचन्द : डा० मनोहर बंदोपाध्याय : पृ० 50 ।
§4§ " प्रेमचन्द : जीवन , कला और कृतित्व " : डा० हंसराज रहबर : पृ० 230 ।
§5§ वरदान : प्रेमचन्द : पृ० 147 ।
§6§ एन इण्ट्रडक्शन टू द स्टडी आफ लिटरेचर : हडसन : पृ० 144 ।
§7§ विचार और विवेचन : डा० नगेन्द्र ।
§8§ सेवासदन : प्रेमचन्द : पृ० 7 ।
§9§ वही : पृ० 7 ।
§10§ वही : पृ० 7 ।
§11§ वही : पृ० 20 ।
§12§ द्रष्टव्य : वही : पृ० 34 ।
§13§ " प्रेमचन्द : जीवन , कला और कृतित्व " : पृ० 230-231 ।
§14§ सेवासदन : पृ० 65 ।
§15§ वही: पृ० 140 ।
§16§ वही : पृ० 174 ।
§17§ वही : पृ० 228 ।
§18§ प्रेमाश्रम : प्रेमचन्द : पृ० 296 ।
§19§ वही : पृ० 298 ।
§20§ वही : पृ० 298 ।
§21§ वही : पृ० 298xx 298 ।
§22§ वही : पृ० 340 ।

§23§ प्रेमाश्रम : प्रेमचन्द : पृ. 115 ।
§24§ वही : ग्र** पृ. 124-125 ।
§25§ वही : पृ. 127 ।
§26§ वही : पृ. 305 ।
§28§ वही : पृ. 328 ।
§28§ वही : पृ. 340 ।
§29§ वही : पृ. 16-17 ।
§30§ वही : पृ. 19 ।
§31§ रंगभूमि : प्रेमचन्द : पृ. 89 ।
§32§ वही : पृ. 253 ।
§33§ वही : पृ. 311 ।
§34§ लाईफ एण्ड वर्क आफ प्रेमचन्द : डा. मनोहर बंदोपाध्याय : पृ. 64
§35§ प्रेमचन्द और उनका युग : डा. रामविलास शर्मा : पृ. 81 ।
§36§ रंगभूमि : पृ. 82 ।
§37§ वही : पृ. 137 ।
§38§ वही : पृ. 138 ।
§39§ वही : पृ. 138 ।
§40§ वही : पृ. 166 ।
§41§ वही : पृ. 210 ।
§42§ कायाकल्प : भाग-1 : प्रेमचन्द : पृ. 77 ।
§43§ वही : पृ. 77 ।
§44§ वही : पृ. 77 ।
§45§ प्रेमचन्द : सं. डा. सत्येन्द्र : पृ. 73 ।
§46§ कायाकल्प : भाग-2 : पृ. 123 ।
§47§ वही : पृ. 7 ।
§48§ वही : पृ. 121 ।
§49§ वही : पृ. 138 - 139 ।
§50§ वही : पृ. 142 ।

§51§ कायाकल्प : भाग-2 : पृ. 107-108 ।

§52§ वही : पृ. 71 ।

§53§ वही : पृ. 71 ।

§54§ वही : पृ. 68 ।

§55§ वही : पृ. 69 ।

§56§ कायाकल्प : भाग-1 : पृ. 40 ।

§57§ " हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण " : डा. महेन्द्र चतुर्वेदी : पृ. 74 ।

§58§ " प्रेमचन्द : जीवन , कला और कृतित्व " : डा. हंसराज रहबर : पृ. 239 ।

§59§ कायाकल्प : भाग-1 : पृ. 40 ।

§60§ गबन : प्रेमचन्द : पृ. 6-7 ।

§61§ वही : पृ. 42 ।

§62§ आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और चरित्र-विकास : डा. बच्चनसिंह : पृ. 121 ।

§63§ गबन : पृ. 131 ।

§64§ वही : पृ. 162 ।

§65§ निर्मला : प्रेमचन्द : पृ. 43 ।

§66§ वही : पृ. 52 ।

§67§ वही : पृ. 90 ।

§68§ वही : पृ. 126 ।

§69§ वही : पृ. 40 ।

§70§ वही : पृ. 62 ।

§71§ वही : पृ. 153 ।

§72§ वही : पृ. 126-127 ।

§73§ वही : पृ. 95 ।

§74§ प्रतिज्ञा : प्रेमचन्द : पृ. 121 ।

§75§ वही : पृ. 125 ।

§76§ प्रतिज्ञा : प्रेमचन्द : पृ. 81 ।
§77§ "प्रेमचन्द : जीवन, कला और कृतित्व : डा. हंसराज रहबर : पृ. 231 ।
§78§ प्रतिज्ञा : पृ.
§79§ वही : पृ.
§80§ कर्मभूमि : प्रेमचन्द : पृ. 167 ।
§81§ वही : पृ. 73 ।
§82 § वही : पृ. 92 ।
§83§ वही : पृ. 32 ।
§84§ वही : पृ. 135-136 ।
§85§ वही : पृ. 42 ।
§86§ वही : पृ. 46 ।
§87§ वही : पृ. 47 ।
§88§ वही : पृ.
§89 § वही : पृ. 212-213 ।
§90§ "प्रेमचन्द : जीवन, कला और कृतित्व " : पृ. 203 ।
§91§ गोदान : प्रेमचन्द : पृ. 277 ।
§92§ वही : पृ. 118 ।
§93§ "प्रेमचन्द: जीवन , कला और कृतित्व " : पृ. 238 ।
§94§ गोदान : पृ. 5 ।
§95§ " प्रेमचन्द : जीवन , कला और कृतित्व " : पृ. 238 ।
§96§ गोदान : पृ. 6 ।
§97§ वही : पृ. 6 ।
§98§ लाईफ एण्ड वर्क आफ प्रेमचन्द : डा. बंदोपाध्याय : पृ. 160-161
§99§ गोदान : पृ. 312 ।
§100§ वही : पृ.
§101§ वही : पृ. 48 ।
§102 § वही : पृ. 285 ।

{103} गोदान : पृ. 208 ।

{104} वही : पृ. 209 ।

{105} वही : ××× पृ. 209 ।

{106} वही : पृ. 291 ।

{107} द्रष्टव्य : महाराव लखपतसिंह : व्यक्तित्व और कृतित्व : डा. के.एम. शाह ।

{108} गोदान : पृ. 126 ।

{109} वही: पृ. 204 ।

{110} वही : पृ. 270 ।

{111} वही : पृ. 222 ।

{112} वही : पृ. 223 ।

{113} वही : पृ. 228 ।

{114} पंचवटी : मैथिलीशरण गुप्त : पृ. 33 ।

{115} उद्धृत द्वारा : डा. मन्मथनाथ गुप्त : "प्रेमचन्द : व्यक्ति और साहित्यकार" : पृ. 351 ।

{116} वही : पृ. 351 ।

{117} वही : पृ. 352 ।

{118} वही: पृ. 351 ।

{119} वही : पृ. 353 ।

XXXXXXXXXXXXXXXX